Impact Factor 6.741 2021

Year 12(02), Vol. XXIII ISSN-0976-8149
Feb.2021 U.G.C. Journal No. 48216 (Pre.)

Manglam

Half Yearly Journal of Humanities & Social Sciences

मङ्गलम्

मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

A Peer Reviewed 'Refereed'Journal

सरस्वती नः सुभगा मयस्करत
मङ्गलम् सेवा समिति, प्रयागराज

Editor

Dr. Dinkar Tripathi

Manglam Sewa Samiti, Prayagraj (U.P.) India

(Regd. Under Society Registration Act 21, 1860)

सम्पादक, मुद्रक व स्वामी

डॉ० दिनकर त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर राजनीति विभाग विभाग
फोरोज गाँधी कालेज, रायबरेली–229001 (उ०प्र०) भारत
मो० +91-7398180008

***मङ्गलम्* प्रकाशक**

463/395 जी शिवम् अपार्टमन्ट
नया ममफोर्डगंज, इलाहाबाद–211002 (उ०प्र०) भारत
फोन नं०–+91-9196002888
Website- www.manglamallahabad.com

कम्प्यूटर ग्रॉफिक्स

संजीव कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर्स, इलाहाबाद,(उ०प्र०) भारत

तकनीकि सहयोग

डॉ० (श्रीमती)वंदना त्रिपाठी
मो० +91-7398180009
Email- tripathivandana01@gmail.com

आवृत्ति

प्रथम अंक– फरवरी 29
द्वितीय अंक– अगस्त 31

मूल्य

* विदेश में–**$ 80**
** देश में – ₹ 600

मङ्गलम् (अर्द्धवार्षिक द्विभाषीय) शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के अपने हैं, सम्पादक के नहीं। इनमें सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। अतः पत्रिका के सम्पाक एवं प्रकाशक पर इसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। विवाद माननीय न्यायालय, इलाहाबाद में ही विचारणीय होंगे।

सम्पादकीय

शिक्षा ही विकास का प्रमुख आधार है। ''प्रज्ञानेत्रोलोकः'' इस उपनिषद् वाक्य से स्पष्ट होता है कि ज्ञान प्रज्ञान से ही संसार की सिद्धि एवं परमपद की प्राप्ति सम्भव होती है। जो जितना अधिक ज्ञानवान होगा; वह उतना ही अधिक सफल जीवन प्राप्त कर सकेगा। यही कारण है कि विश्व के प्रत्येक देश में शिक्षा के सन्दर्भ में नित नूतन आयामों में परिवतन और सुधार कार्य होते रहते है, जिससे समाज और राष्ट्र की अभ्युन्नति की दिशा और दशा का निर्धारण हेाता है। हमारे देश में भी इस सम्बन्ध में विभिन्न समय की सरकारों ने अपने कदम उठाये हैं। भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत निर्दिष्ट है कि 14वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाने की व्यवस्था की जाए।

ज्ञातव्य है कि सन् 1948ई० में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ। जिसके परिणामस्वरूप तब से राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में (सन् 1968 में) प्रथम बार शिक्षा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन वाला प्रस्ताव पारित हुआ; जो कोठारी आयोग (सन् 1964–1966तक) की सिफारिशों पर आधारित रहा। इसीक्रम में शिक्षानीति के लिए किए जाने वाले परिवर्तनों में सन् 1985ई० के अगस्त माह में ''शिक्षा की चुनौती'' नामक एक दस्तावेज निर्मित कर भारत के अनेक वर्गों से शिक्षा विषयक विचार ग्रहण किया और अपनी टिप्पणियाँ प्रस्तुत किया। सन् 1986ई० में श्री राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में नई शिक्षानीति 1986 का प्रारूप तैयार किया गया। इस नीति द्वारा सम्पूर्ण देश में एक समान शैक्षिक ढाँचा स्वीकार हुआ; जिसके आधार पर अनेक राज्यों में 10+2+3 वर्षीय शिक्षा संरचना को लागू किया गया। इस नई शिक्षानीति में भी सन् 1982ई० में कतिपय संशोधन कार्य हुए। सन् 2014ई० में भारतीय लोकतंत्र के आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की चुनावी घोषणा पत्र में एक नई शिक्षा नीति बनाने का उल्लेख किया गया था। सन् 2019ई० में श्री दामोदर दास नरेन्द्र मोदी जी के प्रधानमन्त्रित्व काल में मानव संसाधन मंत्रालय ने सम्पूर्ण देश वासियों से शिक्षा नीति पर परामर्श की माँग की। नई शिक्षानीति 2020 पर देश के अनेकशः शैक्षिणक संस्थानों के साथ सरकार ने चर्चायें किया। फलतः 29जुलाई सन् 2020 को ''भारत सरकार की नई शिक्षा नीति–2020'' की घोषणा की गई; जो अन्तरिक्ष वैज्ञानिक के०कस्तूरी रंजन की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपोर्ट पर आधारित नीति है। इस नीति के द्वारा सन् 2030ई० तक सम्पूर्ण देश में सकल नामाकंन अनुपात (Gross Enrolment Ratio=GER) 100% तक किये जाने का लक्ष्य निर्धारित है। इस नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षा

के क्षेत्र पर सकल घरेलू उत्पाद का 6% भाग सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य तय किया गया है। मानव संसाधन मन्त्रालय का नाम बदल कर ''शिक्षा मन्त्रालय'' किया गया है। कक्षा 5 तक की शिक्षा को मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा अथवा स्थानीय भाषा के माध्यम से प्रदान किए जाने की व्यवस्था दी गई है। ''भारतीय उच्चशिक्षा परिषद्'' की व्यवस्था भी सम्पूर्ण देश की उच्च शिक्षा नीति–2020 के तहत की गई है। पहले से शिक्षा नीति में किए गए इस परिवर्तन को 2020 में जारी किया गया है। इस नीति के अन्तर्गत देश की सम्पूर्ण उच्चशिक्षा (चिकित्सा और विधि शिक्षा को छोड़कर) के लिए एक एकल निकाय का गठन ''भारत उच्च शिक्षा आयोग'' के रूप में किए जाने का प्रावधान किया गया है। कतिपय सहायक पाठ्यक्रम अथवा अतिरिक्त पाठ्क्रम जैसे खेल, संगीत तथा योग आदि को मुख्य पाठ्यक्रमों में जोड़े जाने का विधान है। इसमें एम०फिल० का पाठ्यक्रम समाप्त किया जाना तथा त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स तथा एक वर्षीय मास्टर डिग्री का कोर्स करके पी–एच०डी० में प्रवेश किया जाना प्राविधानित है। स्कूली शिक्षा के पूर्व निर्धारित 10+2 फार्मेट को बदल कर अब 5+3+4 फार्मेट को लागू किया जायेगा। अब पाँच वर्ष तक फाउण्डेशन स्टेज; तीन साल की प्राइमरी और ग्रेड 1,2 तथा 3 वर्ष का प्रीमेटरी स्टेज, तीन वर्ष का मध्य चरण–ग्रेड 6,7,8 और 4वर्ष का उच्च (माध्यमिक) चरण ग्रेड–9,10,11,12 होंगे । नेशलन साइंस फाउण्डेशन की भाँति अब ''नेशनल रिसर्च फाउण्डेशन'' की व्यवस्था होगी, जिससे विज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञान भी पाठ्यक्रम में निर्धारित होंगे।

यह राष्ट्रीय नई शिक्षानीति भारतीय जनता पार्टी के आम चुनावी घोषणा पत्र में किए गये संकल्प को पूर्ण करने की दिशा में उठाये गए कदम के रूप में है। इससे हमारी राष्ट्रीय शिक्षाव्यवस्था में शुभंकर परिणामों की अपेक्षा है। जिसे माननीय प्रधानमंत्री श्री दामोदर दास नरेन्द्र मोदी के शिक्षा सम्बन्धी शुभसंकल्प के रूप में स्वीकारा जायेगा।

''मङ्गलम'' शोध जर्नल के बाईसवाँ पुष्प को विचारवान शोधकर्त्ताओं के अन्वेषणों से विभूषित विचारों एवं मान्यताओं को याथातथ्य रूप में अपने सुधी पाठकों; अनुसन्धाताओं तथा मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम विज्ञजनों से शुभ सुझावों की सादर अपेक्षा करते हैं।

(दिनकर त्रिपाठी)
सम्पादक

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149

विषयानुक्रम

सम्पादकीय

क्र०सं०	शोधपत्र	पृष्ठ
1.	**ADR : Rapidly Evolving Solution To Intellectual Property Disputes** ***- Dr. Ashok Kumar Rai*** ***-Rakesh Kumar Mishra***	**01-11**
2.	**Changing Agrarian Relation In Jummu And Kashmir-A Case Of Concern** ***-Dr.Kaneez Fatima***	**12-21**
3.	**Importance of Information Communication Technology (ICT) in Academic Library** ***-Rakesh Kumar Singh***	**22-25**
4.	**Ancient Structures and Traditional Water Conservation System of India** ***-Dr.Deepti Jaiswal***	**26-33**
5.	**Examine The Effectiveness Of Structured Curriculum Program On Health Aspects Of S.B.A. Among Art's Students** (With special reference of R.D.G.D.C. Hathras) ***-Lalit Kumar Goyal***	**34-40**
6.	समाजीकरण में परिवार की भूमिका *-डॉ० राम चिरंजीव*	**41-45**
7.	मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति तथा भक्ति आन्दोलन *-डॉ० रविन्द्र कुमार गौतम*	**46-54**
8.	जनजातीय समाजों में महिलाओं की स्थति एवं भूमिका *-डॉ० ललिता पाण्डेय* *-डॉ० अभिषेक त्रिपाठी*	**55-61**
9.	बाल गंगाधर तिलक के विचारों में समाज सुधार एवं राष्ट्र निर्माण *-डॉ० कृष्णानन्द चतुर्वेदी*	**62-68**

10.1857 के विद्रोह में इलाहाबाद (प्रयागराज) की भूमिका **69-73**

-डॉ० अरुण कुमार सिंह

11.संसदीय लोकतंत्र में मंत्रीपद : सफलता की शर्तें **74-77**

-डॉ० बृजेश स्वरूप सोनकर

12.वैदिक काल एवं वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति **78-83**

-डॉ० नीलम सोनी

13.भगवतीचरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा' का वस्तु विन्यास एवं शिल्प **84-93**

-डॉ० आजेन्द्र प्रताप सिंह

14.वाल्मीकीय रामायण में वर्णित पर्यावरणीय चेतना **94-99**

-डॉ० श्री भानु मिश्र

15.मैथिली शरण गुप्त का साहित्य और नारी भावना **100-103**

-डॉ० वन्दना त्रिपाठी

16.स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति एवं उच्च शिक्षा में विधाओं का स्त्रीकरण (लखनऊ विश्वविद्यालय के विशेष संदर्भ में) **104-113**

-डॉ० अमर नाथ

17.भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय : डॉ० भीम राव अम्बेडकर का दृष्टिकोण **114-120**

-डॉ० अनुराधा सिंह

18.विचलन और अपराध : समाजशास्त्रीय विश्लेषण **121-128**

-डॉ० रागिनी त्रिपाठी

19.भारतीय किन्नरों की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन **129-133**

-राजेश कुमार

20.प्रयागराज (इलाहाबाद) का संक्षिप्त इतिहास **134-139**

-सिद्धार्थ सिंह

पुस्तक समीक्षा

1. आपस्तम्बीय वैदिक ज्यामिति विज्ञान : एक अनुशीलन *-डॉ० लोकेश त्रिपाठी* **140-141**

2. दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण संस्कृति *-जितेन्द्र प्रताप सिंह* **142**

Manglam-Year 12(01) Vol.XXII, Feb.2021
ISSN-0976-8149, P.- 01-11

ADR : Rapidly Evolving Solution To Intellectual Property Disputes

Dr. Ashok Kumar Rai[*]

Rakesh Kumar Mishra[**]

Intellectual property (IP) is the branch of law that protects innovations and creations, such as new technological inventions, literary, artistic and musical creations; distinctive signs; computer programs; trade secrets; microchips and geographical designations etc. These creations and inventions used to be protected commonly by patents, trademarks, trade secrets and copy-right or other types of intellectual property. A number of intellectual property rights (IPRs) disputes relate to validity and ownership and some others concern about licensing to use the protected types of IP. In a number of cases, these disputes relate to illicit copying or counterfeiting or agreements concerning the transfer of IP. This article touches the issues faced in IPR dispute resolution and the scope of applicability of ADR mechanisms in IPR dispute resolution; individually analyzing application of arbitration and mediation in IPR dispute resolution.

Unlike litigation, ADR encourages parties to reach an amicable settlement. Furthermore, in contrast to litigation, which could be one-sided, the solutions obtained through ADR proceedings favour both the parties. It is important to note that ADR is dynamic in nature, and hence, can be altered accordingly, to meet the changing needs of the society and its people. It provides the parties the freedom to tailor-make the process and rules of the trial, have control over the proceedings as well as encourage the participants to come up with a creative solution which favours both the parties. This enables the parties to preserve their economic resources, valuable time as well as the relationship between the parties.[1]

Intellectual property (IP) rights are a strategic component to a business's success, as these rights can be used to prevent

[*] *Associate Professor, Deptt. of Law, K.S. Saket P.G. College, Ayodhya (U.P.)*
[**] *Research Scholar, Deptt. of Law, K.S. Saket P.G. College, Ayodhya (U.P.)*

competitors from illegally using the business' IP assets. For intellectual property disputes, lengthy legal proceedings such as judicial or administrative proceedings which are adversarial in nature can be disruptive to business operations because IP rights are mostly time sensitive. If the subject matter is computer software or microelectronics, the judicial proceeding may last longer than the actual lifecycle of the product. If the parties are involved in a legal dispute, they have the option to pursue ADR methods in a parallel process, upon consent by all parties, to resolve their differences even though litigation may still be pending.

ADR itself is a growing field in India and most convenient dispute resolution methods applicable in India for IPR dispute resolution are Arbitration and Mediation. Both of these procedures are fairly simple ones that offer the parties confidentiality, time and cost-effectiveness.

Types Of IPR

Intellectual property rights are the rights given to persons over the creations of their minds. They usually give the creator an exclusive right over the use of his/her creation for a certain period of time. Intellectual property rights are customarily divided into two main areas:[2]

(i) Copyright and rights related to copyright

The rights of authors of literary and artistic works (such as books and other writings, musical compositions, paintings, sculpture, computer programs and films) are protected by copyright, for a minimum period of 50 years after the death of the author.

(ii) Industrial property

Industrial property can usefully be divided into two main areas.[3] One area can be characterized as the protection of distinctive signs, in particular trademarks and geographical indications Other types of industrial property are protected primarily to stimulate innovation, design and the creation of technology.

Trademarks And Alternative Dispute Resolution

In India, trademark litigation covers an overwhelming landscape in the intellectual property related litigation. The

trademark litigation is an inter parte adjudication. That being the case, the modes of alternative dispute resolution can certainly provide an appropriate recourse to the ailing judiciary. Moreover, it is germane to note that in cases of cybersquatting, arbitration plays an eminent role in the streamlined procedure outlined under the Uniform Domain Name Dispute Resolution Policy, 1999 and the Indian Domain Name Dispute Resolution Policy for the adjudication of disputes. This brings to fore the importance of arbitration and the use of other alternate dispute resolution measures for reconciliation of the interests of the trademark owner and the impugned party.

International Disputes

Intellectual property cases that are international in scope are particularly well-suited for arbitration or mediation. Arbitration is a well-established dispute resolution mechanism for international commercial disputes, and mediation is well known in many Asian countries (where it may be called conciliation). Mediation is also attracting attention in the European Union, where there is now a push to use mediation before another adversarial process.[4] The reasons for acceptance of ADR in the international business community include, among others, a lack of confidence in national courts; unfamiliarity with foreign laws; concern about costly, long court proceedings; unpredictable and possibly inconsistent outcomes; and difficulties with enforcing judgments obtained in foreign countries. These considerations are especially applicable in international IP disputes, since IP rights are issued on a country-by-country basis. Using international arbitration makes it unnecessary to litigate in multiple affected jurisdictions having unfamiliar procedures, different legal protections for IP rights, and different enforcement mechanisms.[5] By arbitrating a multinational IP dispute in a single dispute resolution process, the parties can save money and time, and obtain a consistent result.[6]

Need For Technical Expertise

Another factor bearing on how best to resolve a particular intellectual property dispute is the technical complexity and need for technical expertise.[7] District court judges and juries tend not

to be experts in IP and the technologies involved in patent cases. Considerable time is needed to bring them up to speed on such matters as the technical background (i.e., the state of the art before the patented invention); the nomenclature of the technical field; the teachings in prior patents and publications; and the advantages of the patent invention. In arbitration, the parties can select an arbitrator who has the relevant technical IP expertise. It is far easier to educate this type of arbitrator about the case than a district court judge and jury. An experienced patent arbitrator familiar with "claim interpretation" issues will more quickly appreciate the important technical terminology and be able to more efficiently review and decide the case. In addition, an experienced patent arbitrator tends to have more time available than a judge to evaluate the subject matter of the patent and prior patents, publications, and products (i.e., prior art) that bear on whether the patent represents a valid, enforceable advance in the technology. From the parties' points of view, knowing that the decision maker understands the technology and the guiding principles of intellectual property law can elevate their confidence in the process and ensure that their positions and technical and scientific arguments were "heard" and considered. [8]

Common Form Of ADR : Arbitation And Mediation

Arbitration is a binding process in which one party may "win" all claims and the other "lose." However, similar to a court proceeding, arbitrators may reach different findings on different claims and counterclaims. So while arbitration is considered to be a "win-lose" process, the outcome really depends on the merits of each claim and counterclaim. There is no automatic right to appeal an arbitration award. Parties can sidestep the lack of appeal rights by agreeing to *non-binding* arbitration and the costs probably would be quite high if one party rejected the award and proceeded to court, thereby incurring large legal fees that both parties initially hoped to avoid.

Unlike arbitration, mediation is not an adjudicative process; it is facilitative in nature. In mediation, the mediator does not decide substantive issues. So in a patent dispute, one should not expect to have a decision by the mediator on such issues as whether the

defendant infringed the patent, or whether the patent was valid, or whether the plaintiff actually owned the patent. Similarly, in a trademark case, the mediator will not decide the likelihood of confusion between trademarks, or whether the plaintiff was the fir issues is not the focus of mediation. The goal is to seek business solutions acceptable to both sides through negotiation, compromise and creative problem solving. Early proponents of applying ADR to intellectual property disputes favoured arbitration. However, arbitration has many of the attributes and costs of litigation without the right to appeal the arbitrator's decision. Today, most proponents of applying ADR techniques to IP cases recommend mediation, sometimes preceded by neutral evaluation. Mediation comprises some 70 percent of ADR in the U.S.[9]

IP cases, particularly patent infringement cases, usually involve issues of willful infringement, validity, injunctive relief and unenforceability due to, for example, inequitable conduct. Neither party will wish to engage in mediation unless they feel confident that they have sufficient facts to enable them to evaluate the strengths and weaknesses of their position. For that reason, designing a process that satisfies the informational needs of both parties is of paramount importance prior to proceeding with mediation.

While the two most common forms of ADR are arbitration and mediation, negotiation is almost always attempted first to resolve a dispute. It is the preeminent mode of dispute resolution. Negotiation allows the parties to meet in order to settle a dispute. The main advantage of this form of dispute settlement is that it allows the parties themselves to control the process and the solution.

Given the high cost and protracted nature of intellectual property litigation, early and careful evaluation of how best to meet business goals involving intellectual property rights is essential. In many cases, mediation and/or arbitration can meet business needs better and more cost effectively than litigation. Not only is litigation expensive, it is a liability on the balance sheet for as long as the lawsuit exists, which can be a decade or more in patent cases

that are appealed and then retried. In *Grain Processing Corp v. American Maize Products Co.*[10], patent infringement case originally filed in 1981 with federal circuit opinion addressing appealed damages issues in 1999. In *Rite-Hite Corp. v.Kelley Co. Inc.*[11], patent infringement case initially filed in 1983 with damages issues extending appeals over 10 years.

While evaluating the performance shown by the Indian judiciary in cases related to intellectual property rights, the Supreme Court of India has in the case of Shree Vardhman Rice & Gen Mills v. Amar Singh Chawalwala[12] held that "…Without going into the merits of the controversy, we are of the opinion that the matters relating to trademarks, copyrights and patents should be finally decided expeditiously by the Trial Court instead of merely granting or refusing to grant injunction. In the matters of trademarks, copyrights and patents, litigation is mainly fought between the parties about the temporary injunction and that goes on for years and years and the result is that the suit is hardly decided finally. This is not proper…In our opinion, in matters relating to trademarks, copyright and patents, the proviso to Order XVII Rule 1(2) C.P.C. should be strictly complied with by all the Courts, and the hearing of the suit in such matters should proceed on a day to day basis and the final judgment should be given normally within four months from the date of the filing of the suit."

Many litigators and business executives believe that when a company's survival is at stake, the dispute should be litigated. However, there is no reason to consider litigation the only possibility in this situation. Both arbitration and mediation allow for confidential treatment of the parties' financial data, business-planning information and development work[13]—protection not available in litigation, at least once the trial begins. Protective orders typically are effective only during the discovery phase of litigation. This is an important factor to consider when trade secrets or highly competitive businesses are involved in a dispute. Parties may not want to discuss their proprietary information in court in front of competitors who frequently monitor IP trials precisely in order to learn about a competitor's business. Mediation and

arbitration do not take place in public. Thus, ADR should not be ignored just because an IP case is monetarily large, complex, and important.

The method of resolving disputes through Alternative Dispute Resolution (ADR) is deep rooted in the Indian Culture and instances of the same can be traced back to the days of Ramayana and Mahabharata. In Mahabharata, Lord Krishna acted as mediator to avert Mahabharata war and in Ramayana, Lord Hanuman and Angad acted as mediators to resolve the dispute with Ravana. However, the mediation in these incidents failed and it can be gathered that it is extremely crucial for the parties to have an open mind and willingness to find a solution and settle the dispute amicably, in order to ensure effectiveness of the ADR mechanism. Considering, the long usage and the potential of ADR, it is suggested that parties before approaching any Court of law should be open to resolve their disputes through the various ADR mechanism.

Advantage Of ADR In IPR

In IP disputes parties have high stakes involved in the final outcome and hence, the parties that refer the dispute to the litigation tends to develop concerns not only regarding the delay and the high amount of expenses to be incurred during the proceedings but also regarding the level of uncertainty in relation to the outcome of a case and one cannot ignore the fact that the likelihood of obtaining a one sided decision is more in traditional litigation. It was pointed out by Lord Younger (Intellectual Property Minister of UK, 2010-2015) "For intellectual property disputes, going through the courts should be the last resort, not the first port of call."[14] ADR does not involve a polarized approach towards dispute settlement, instead comprises of an ocean of opportunities. It includes varieties of method and practices, which can be further altered according to the needs of the parties. The process may range from being facilitative to being evaluative and also may include results that are consensual and binding. Parties should explore the different means of dispute resolution as every method has its own benefits. Methods of dispute resolution such as Negotiation, Mediation, Arbitration and conciliation are commonly used by

parties in India. Keeping in view the several benefits of ADR, the Indian Judiciary as well as legislature promote and encourage parties to resolve their dispute through the ADR techniques and the efforts with regards to the same are even evident in the Section 16 of the Court Fees Act, 1870. Section 16 of the Court Fees Act, 1870 provides for refund of court fees in cases where the matter is referred by the Court to any one of the modes of settlement of dispute referred to in section 89 of the Code of Civil Procedure, 1908 and the same is thereafter settled by the parties. ADR system provides freedom to the parties to customize or tailor the process of dispute resolution, according to the needs and interests of the parties. Unlike in litigation where the parities are bound by the rigid procedures as prescribed under various acts such as Civil Procedure Code, 1908 and India Evidence Act, 1872.

Alternative dispute resolution mechanisms are less time consuming, efficient and provide flexibility to the right holder. It is important to note that in all the commercial transactions, the route of alternate dispute resolution has already shown its majority over the traditional modes of litigation. Nowadays, contracts related to transfer of intellectual property mostly include the "arbitration-mediation" clause. This highlights the weight of arbitration in commercial intellectual property transactions. In a landmark judgment in the case of Bawa Masala Co. vs. Bawa Masala Co. Pvt. Ltd. and Anr.[15], where a number of legal disputes were already resolved through a process of alternate dispute resolution, the Delhi High Court passed orders for adoption of a process known as early neutral evaluation, in an intellectual property based litigation suit. The Court in this case, under the umbrella of section 89 of the Civil Procedure Code, 1908 mooted for the inclusion of such procedures for amicable settlement of disputes. The Court further said that the early neutral evaluation procedure shares the "same features as a mediation process…the difference is that in case of mediation the solutions normally emerge from the parties and the mediator makes an endeavor to find the most acceptable solution" whereas "in case of early neutral evaluation, the evaluator acts as a neutral person to assess the strengths and weaknesses of each of the parties." The Court further made a distinction between early

neutral evaluation and arbitration by stating that in early neutral evaluation "there is no testimony or oath or examination and such neutral evaluation is not recorded." The Court also held that early neutral evaluation is "confidential and cannot be used by any of the parties against the other. There is no award or result filed." This stands as a seminal case, where, Indian Courts have tried to bring alternative dispute resolution machinery for solving intellectual property infringement related matters. This case also highlights the inclination, which Indian Courts have started sharing, towards involvement of alternate dispute resolution measures in resolving of such disputes. However, the determination of infringement of intellectual property, as it determines the rights between two parties, can certainly be adjudicated by the use of alternative dispute resolution machinery.

Drawbacks

Use of alternative modes of dispute resolution for determination of intellectual property related disputes may face some problems. Firstly, since the protection of intellectual property is territorial in nature, the public policy consideration as set down by the Supreme Court of India in the case of O.N.G.C v. Saw Pipes[16], can pose a hurdle towards enforceability of arbitral awards, if made on the mandate of intellectual property related disputes. Secondly, the issue of validity of intellectual property points towards determination of right against everyone. This might pose another roadblock for the use of alternative dispute resolution machinery in intellectual property related disputes.

Interim relief/ emergency relief

Often IP case involves sensitive information and it may require the parties to take immediate action to ensure complete protection and vindication of the right, as a consequence of which the right holder may be constrained to adopt interim measures. Henceforth, the option of interim injunction or emergency relief available in the formal system acts a limitation to the ADR process and also, it is an exception to the perception that ADR provides an early outcome in a dispute as compared to the adjudication process. In the case of ADR by the time a mediator or an arbitrator is appointed,

it might get too late to provide such relief. It becomes quite essential for a party in certain circumstances to restrict and prohibit the other party from damaging the evidence or the subject matter of the claim before the purpose of the claim becomes futile.

Conclusion

In this digital era the growing businesses and start-ups in India see potential in acquiring Intellectual property in developing their business, but they can't afford to spend huge time and resources on resolving disputes in acquiring the intellectual property. The larger organizations like Google, Facebook, Apple, etc. who continuously innovate in various fields of technology also require quick acquisition of intellectual property mainly patents. Being purely a voluntary process, ADR turns IPR dispute resolution into a business-friendly process. A successful application of ADR in the field IPR not only means faster resolution of disputes but also proves to be cheaper and affective one. With IP litigation becoming increasingly expensive, alternative dispute resolution is now a popular, cost-effective solution for many companies. Statutory rights, which are limited in nature, solicit a different approach for their effective enforcement. The establishment of various quasi-judicial bodies under different intellectual property laws, points out that these bodies were formed to share the load and to render an expert testimony towards the determination of validity of intellectual property. The infringement of intellectual property rights, since it pertains to an inter parte dispute, can effectively be resolved using alternative dispute resolution. Intellectual property disputes often involve proprietary information (i.e., trade secrets or patented inventions) and the confidentiality of this information is easier to maintain in private arbitration or mediation rather than in public courts.

Refernce

1. *Surbhi singh, Publication - Lex Witness – April 2019 accessed on 30 march*
2. *https://www.wto.org/english/tratop_e/trips_e/intel1_e.htm accessed on 21.6.2020*
3. *Ibid*

4. *Dispute Resolution Journal, vol. 61, no. 2 (May-July 2006), a publication of the American Arbitration Association, 335 Madison Avenue,New York, NY 10017-4605, 212.716.5800,www.adr.org.*
5. *Tom Arnold et al., "Managing Patent Disputes Through Arbitration," 46 Arb. J. 5-6 (September 1991); see also Arnold, "Intellectual Property Disputes" in Alternative Dispute Resolution: The Litigator's Handbook, ch. 14, 231, 243 (Nacy Atlas et al eds. ABA Section of Litigation 2000)*
6. *Ibid*
7. *See Arnold et al., supra note 6.*
8. *Dispute Resolution Journal, vol. 61, no. 2 (May-July 2006), a publication of the American Arbitration Association, 335 Madison Avenue,New York, NY 10017-4605, 212.716.5800,www.adr.org.*
9. *Mediators vs. Gladiators in the Intellectual Property World: Joyce B. Klemmer (Retired) [accessed on May 18, 2020]*
10. *185 F.3d 1341 (Fed. Cir. 1999)*
11. *56 F.3d 538 (Fed. Cir.1995)*
12. *(2009) 10 SCC 257 5*
13. *Tom Arnold et al., "Managing Patent Disputes Through Arbitration," 46 Arb. J. 5-6 (September 1991); see also Arnold, "Intellectual Property Disputes" in Alternative Dispute Resolution: The Litigator's Handbook, ch. 14, 231, 243 (Nacy Atlas et al eds. ABA Section of Litigation 2000)*
14. *RED TAPE CUT FOR SMALL BUSINESSES WITH INTELLECTUAL PROPERTY DISPUTES - GOV.UK (Gov.uk, 2017) https://www.gov.uk/government/news/red-tape-cut-for-small-businesses-with-intellectual-property-disputes accessed 30 March 2017*
15. *AIR 2007 Delhi 284*
16. *(2003) 5 SCC 705.*

Manglam-Year 12(01) Vol.XXII, Feb.2021
ISSN-0976-8149, P.- 12-21

Changing Agrarian Relation In Jummu And Kashmir-A Case Of Concern

Dr.Kaneez Fatima*

Abstract

In the pre-reform period,the agricultural economy,in Jammu and Kashmir, remained stagnant and the land concentration in few hands increased over time because of feudalistic agrarian relations. These relations were highly exploitative in character and the objective of agrarian organization was to collect revenue from the peasants, who were subject to high rents, insecurity of tenure, forced labour and forced ejectments. However, various land reform measures which were initiated after independence gave a death knell to the feudal setup of the state and played a key rolein improving the condition of peasants and bringing the overall change in agrarian relations in Jammu and Kashmir.It is in this context thatan attempt is made in present study to highlight the agrarian relations in pre-reform and post-reform period in Jammu and Kashmir. The paper is divided into three parts, part one deals with the pre-reform land systems. Part two deals with the formulation and implementation of various land reform measures and Part three deals with the concluding remarks.

Keywords: Agricultural Land, Peasants,Land Reforms,Tenancy rights, Pre-reform period, Post-reform period .

Introduction

Throughout the history of Kashmir , land has been considered to be the property of the ruler and the chief financial source has been the demand on agriculture.The land holding system resulted in the development of landed aristocracy,absentee landlordism,concentration of land among few and increasing exploitation of the share of peasants.It is amidst this stagnant,unjust and exploitative agricultural organization that the state government immediately after independence, initiated various agrarian reform measures in different phases.In the first phase (April 1948),government announced the end of all jagirs, maufisand fixed cash grants except those granted to all religious institutions. In

**** Assistant Professor, Department of Economics, Govt. Degree Collage, Boys Anantnag, Kashmir .***

second phase(Oct.1948) State Tenancy Act of 1924 was amended which amongst other things provided for, grant of protect tenancy rights, imposition of restrictions against ejectments andfixation of rentals payable by tenants. Further amendments were made in 1950.These amendments were however, short term measures and the impact was just" marginal" as on 17th ofOct. 1950 was passed the Big Landed Estates Abolition Act,which placed a ceiling on the holdings of proprietors at 22.75 acres i.e. 182 kanals of land,excluding orchards,fuel and fodder reserves and uncultivable waste land and the excess of land was transferred to the actual tillers free from all encumbrances, and no compensation was paid to dispossessed landlords.

The experience gained during the implementation of these land reform measures, prompted the policy makers to introduce another dose of land reforms which took the shape of Jammu and Kashmir Agrarian Reforms Act of 1976.

The Act seeks to abolish the system of absentee landlordism, disallows the creation of new tenanciesand fixes a ceiling on land at 12.5 standard acres.

Objectives of the study

The proposed study seeks to highlight the agrarian relations in pre-reform and post-reform period in the valley in particular and in Jammu & Kashmir in general. The main objectives of the study are as under:-

1. To study the features of agrarian relations in the pre-reform period.
2. To study the various land reform measures that were introduced in Jammu & Kashmir after 1947.
3. To compare the nature of earlier reforms with the recently implemented land reform measures.
4. To enquire into the question of whether the various land reform measures undertaken in the state were revolutionary and envisaged a radically new rural economy making fundamental changes in the land relationships.

Hypotheses

The land reform / land redistribution measures were instrumental in improving the condition of peasants and in bringing the overall change in agrarian relations in Kashmir.

Methodology

The relevant data used in the study has been collected from secondary sources. In present study the change in land rights from 16th to 21th centuries are taken into account. For such a long period, a few sources of information are available. However, every effort has been made to collect the appropriate data from all possible sources. The data reflecting the objectives of present study has also been collected from the concerned departments and from othernon-official sources that highlight the features of various land reform measures, initiatedin Jammu & Kashmir, after 1947.

Situation analysis

While discussing the history of Kashmir,the change in land rights from 16th to 20th centuries are taken into account, such a long period was characterized by the rule of Mughals, Afghans,Sikhs and Dogras and was itself marked by three distinct phases from 1586-1846, 1846-1948 and 1948 till the end of 20thCentury.The first witnessed a great deal of continuity in land rights of the peasantry. The second registered the sudden resumptionof these rights (due to treaty of Amritsar, when whole nation was sold to Maharaja Gulab Singh) which is suggestive of a structural change in the then existing agrarian relations. The third phase observed the culmination of that very systematic process of restoration of the above rights, which had actually begun with Lawrence's settlement in 1889.

Prior to the 16thcentury, private individuals other than the king and his parasite class of intermediaries, held property rights which could be freely alienated by sale or mortgage in urban and rural Kashmir alike. Under the Mughals(1586-1753) and the Afghans(1753-1819) also plenty of evidence exists pointing to ownership(milkiyati) rights of private persons on distinct articles of property including land.

In other words, there was no legal bar on the peasant's right to free alienation, though he might have been most often confronted with a practical difficulty to find a buyer in the face of limited money economy, abundant land and shortage of labour. Even more interminable and complex than this was the problem manifest in his ''restricted power of enjoyment'' which allowed him to retain only that much of the produce as could hardly keep his body and soul together. Though legally he held and owned land, yet he was practically denied the maximum dividends that accrued as a sequence of his sole input labour on the land. During the Sikh rule(1819-1846),a similar kind of restriction was obtained.

During 1846, the structural change in the existing land relations occurred with the coming of the Dogras, who purchased Kashmir and its dependencies from the English(British rulers) against a cash amount of Rs.75 lakh under the terms of the famous 'Treaty of Amritsar' on March 16,1846.By virtue of this sale deed, the ownership of land in Kashmir valley vested with Maharaja for the time being on throne. The consequences of sale followed and Kashmir began to undergo one of its worst phases in its history with the condition of its people particularly the peasants turning miserable, acquiring the status of "chattel" with no rights whatsoever and successive Dogra rulers, claiming Kashmir as their "private property"[1].

With a view to exercise his over lordship besides giving a feeling to his subjects that he alone was the sole proprietor of the whole land, Maharaja Ghulab Singh in the first instance dispossessed peasants of all those land rights which they enjoyed earlier under the Mughals, Afghans and the Sikhs. The rights so seized were assumed by the Maharaja himself who partially transferred them to the neo-class of intermediaries, mostly Hindu Rajputs, called Jagirdars, Muafidars and Pattadars[2].

With the establish of British residency in Kashmir in 1885, the people of Kashmir started to make some progress towards prosperity.Andrew Wingate was appointed as the first settlement officer in the year 1887[3].Wingate could not continue his work and was replaced by Walter Lawrence. On account of Lawrence's

settlement, exploitation diminished but did not altogether come to an end, because the right so granted was inalienable debarring the peasants from raising money for reinvestment in buying cattle, seed and banking etc[4].

An equally important factor was manifest in the existing feudal system featured by the presence of a parasitic class ofJagirdars,Muaffidars and Mukararies, though a few in number[5].

In short on the eve of independence, the condition of the peasantry that constituted 83-86% of the population was objectively miserable having to bear heavy executions, suffering at the hands of corrupt and repressive officials, with no security of tenure (despite the fact that the state had passed the Jammu and Kashmir Tenancy Act, 1923 which provided some relief) and finally facing the slave institution of beggar-forced unpaid labour (though abolished on paper in 1935 by the Jammu & Kashmir state Assembly ,Praja Sabha),and it is amidst this stagnant, unjust and exploitative agricultural organization that the state government which was committed to the abolition of intermediaries, redistribution of land and protection of tillers from the parasitic hierarchy of intermediaries, in the policy document "New Kashmir" [6,] initiated various agrarian reforms in 1948 and the years proceeding thereafter in different phases.

Abolition of feudal institutions (Jagirdars, Muafis and Mukararies) marked the first phase,(1948) of the reform measures except those granted to the religious institutions. In the second phase of reform measures (Oct.1948), the State Tenancy Act 1924 was amended, the new act known as Tenancy (Amendment) Act VII of S.2005 (1948)[7.]

Further amendments in the Tenancy Act were made in 1950 in order to make improvements on land held by tenants. Since these amendments were only short

term measures and the impact was just "marginal". Thus in the third phase, the changes in agrarian structure were implemented, and it was in this context that, on 13th July, 1950, the Govt. made the historic decision of transferring land to the tiller and on the 17th of Oct. 1950, the Big Landed Estates Abolition Act, was passed.

Big Landed Estates Abolition Act,2007(1950A.D)

The main objectives of this Act were 'to remove the intermediaries between the tiller of the soil and the state, and to provide for the abolition of such proprietors as own big landed estates and to transfer the land held by them to the actual tillers. The main features of this Act were:-

1. The Act placed a ceiling of 182 Kanals(22 ¾ acres) upon land that may be held by a proprietor exclusive of orchards, fuel and fodder reserves and uncultivable waste land.
2. The right of ownership in excess land gets extinguished and transferred to the tiller to the extent of their actual cultivating possession during Khariff 2007 (Sept. - Oct. 1950).
3. Ceiling limit for tiller-owner was fixed at 20 acres (160 kanals) excluding aforesaid categories of land.
4. The land in excess of ceiling limit which was not in cultivating possession of any tenant escheated to the state.
5. The landlords were given the right to choose their retainable unit
6. According to this Act, all rights, title and interest of the expropriator in respect of such land (of which the right of ownership is extinguished) shall cease and be vested in the tiller or in the state as the case may be, free from all encumbrances.

Though this Act carried with it certain flaws.Yetwhatever the defects in the implementation of this Act, the fact of the agrarian change initiated by the reforms, cannot be denied. The total land transferred to the tillers as a result of land reforms was 92,927 acres during 1951-52, 66,755 acres during 1952-53 and 36,619 acres during 1953-54. Approximately 230,000 acres of cultivated land was transferred to 200,000 tillers by the end of 1953 and about 800,000 acres up-to 1961.

Since the experience gained in the implementation of the aforesaid reforms necessitated that the tenants should be granted more security and for this purpose tenancy (Amendment) Acts, 1955 & 1965 were implemented.

At that time, the position of a tenant had become fairly secure,

but he was still nothing more than a tenant and could not think to make large improvement in activities as he always remained under the fear of resumption of land by his landlord. Consequently, in 1976, the Jammu and Kashmir Agrarian Reforms Act 1976 was passed.

Jammu and Kashmir Agrarian Reforms Act of 1976

The main objectives of this Act are to transfer the land to tillers thereof and reduction of ceiling area to 12.5 standard acres and better utilization of land in Jammu and Kashmir.The main features of this Act are:

1. The Act seeks to abolish the system of absentee landlordism. According to this Act, all rights, title and interest on land of any person, who was not cultivating it personally on 1st Sept. 1971, shall be deemed to have extinguished and vested in the state, with effect from 1st May 1973.
2. The Act fixes a ceiling on land at 12.5 standard acres and makes no exception in favourof orchards. According to this act, any land held by a person in his personal cultivation whether an owner or a tiller on 1st Sept. 1971, should not exceed 12.5 standard acres or 100 kanals i.e. the total land a person can keep in his possession for cultivation shall not be more than 12.5 standard acres or 100 kanals and in this case, the excess of land shall be deemed to have vested in the state. The option of selecting the land, however, for personal cultivation lies with the owner.
3. The Act relates the ceiling area to a family and not to an individual.
4. The Act provides that a person and other members of his family, if any, whose rights in the land have been extinguished by the Act, may resume land for purposes of bonafidepersonalcultivation.But such person or persons are entitled to file an application for personal cultivation within six months of the commencement of this Act. The applicant for resumption shall within six months of the commencement of this Act, take up normal residence for the purpose of cultivating such land personally in the village in which the land

sought to be resumed is situated or in an adjoining village.

5. According to this Act, no person, who or any member of whose family, if any, is an income tax payer, shall be eligible to resume any land. Similarly, no person, who or any member of whose family, holds an orchard exceeding 100 kanals, shall be eligible to resume land.
6. The Act also determines the extent of land that can be resumed by the owner, that is, the person who is eligible to resume land, cannot resume land for cultivation exceeding five(5) standard acres and 6.50 standard acres in case of a person serving in defense force on or after the 1st day of April 1965, or a widow or an orphan who is minor or an insane person or a lunatic or a personwho is crippled or incapacitated by old age or infirmity i.e. this category shall be permitted to resume land 20% in excess of the land resemble by others.
7. The Act provided that the person allowed to resume his land shall not fail to cultivate his land within one year of entering into possession otherwise such landshall vest in the state.
8. The Act provides adequate compensation to persons (ex-landlord) whose rights in land get extinguished as a result of the implementation of the Act, at rates fixed proportionate to the type of land.
9. Disposal of surplus land:- The Act provides that the government shall be competent to dispose of surplus land vested or which may vest in the state under this Act.

According to the aforementioned features, the Act marked a tangible improvement over all the previous Acts and abolished the dualistic agrarian structure by making the tiller of the land ,the actual owner of the land. Thus, the foregoing discussionclearly indicates, thatland reform measures registered a landmark in the history of Kashmir. It freed the economy of Jammu and Kashmirfrom the shackles of the stagnation of the pre-reform period and made a remarkable contribution in securing the position of peasants. The peasant now was very eager to make investments in land as he was more secure and also was the direct beneficiary of any such investments, which had a positive impact on agricultural

production.

Summary & Conclusion

From the foregoing discussion,it can be concluded that on the eve of independence, the agrarian system in the Jammu & Kashmir, was feudal in nature and the cultivators suffered greatly due to heavy taxation and levy on the land.

The peasants of Kashmir began to get some relief from 1885, when the British Residency was set up in Kashmir. In other words, exploitation diminished but did not altogether come to an end because even at that time, tenants ploughed, sowed and reaped "Gold Yielding Harvest" only for the benefit of luxurious and ease loving landlords. Therefore in order to achieve the goal of social justice, one of the immediate tasks to be addressed after independence was that of carrying out agrarian reforms. Based on the qualitative analysis of various land reform measures and their implementation in Jammu and Kashmir, it is to be concluded that, the inception of land reforms in Jammu and Kashmir were instrumental in bringing the overall change in agrarian relations in Kashmir. Even nobody can deny the fact that land reforms / land redistribution was the land mark move towards prosperity and the reconstruction of rural economy in Jammu and Kashmir. The feudal setup was eliminated in all its forms and manifestations. Land was transferred to the actual tiller with rights of permanent nature. Nevertheless the radical nature of the land reforms had substantially emancipated the peasantry of Jammu and Kashmir from the bondages of institutional depressants and therefore had injected the elements of dynamic growth in the agricultural sector of Jammu and Kashmir

Reference

1. *Kashmir Oppressed, pp59-56; Documents on Kashmir Problem,pp5-7.*
2. *Jagirdars- who acted the masters of their respective Jagirs. The Jagir was a free grant of one or more villages from the ruler to the grantee as a reward for some conspicuous service, either military or otherwise. Muafidars (who held chunks of land mostly revenue free) and Pattadars (to whom was transferred the right to realize rent from tillers of a piece of land i.e. rent receivers), enjoyed the*

privileges next to the Jagirdars

3. *Wingate,Ibid pp67 and 72.*
4. *The Valley of Kashmir, P431*
5 *Inside Kashmir, pp230-31;On The Way To Golden Harvest,p45-52.*
6 *On The Way To Golden Harvest, Introduction, pp.II-III.*
7. *Report of the Land Commission, Jammu and Kashmir Government, March 1968,pp55-71.*

Manglam-Year 12(01) Vol.XXII, Feb.2021
ISSN-0976-8149, P.-22-25

Importance of Information Communication Technology (ICT) in Academic Library

Rakesh Kumar Singh*

Abstract

This paper discusses the different dimension of the Information Communiation Tecgnology(ICTs). It gives an awareness of technology in library and why there is a need to understand the use of ICT in the library for rendering enhanced library services and information to the user. Aims of ICT in library, Advantages of ICT to library, Role of Librarian In ICT Environment, Impact of ICT on Library. The basic aim of this paper is that at end of this paper on should know impact of ICT on the work environment in academic library.

Introduction

ICTs enable libraries to locate store, retrieve and disseminate information. ICT tools such as CD-ROM, e-mail are used in libraries for dissemination of information. In addition, digitization of information resources which involves converting print resources to electronic form is also carried out, using ICT. Effective application of information technology in library transmits users' satisfaction. The present scenario demands the updated technology for the faster and approachable library services. Gradually, new technologies are developed; consequently there is the need to develop our skills and capacity to provide enhanced library services. Library resources must be used at a large amount. The successfulness of a library and the library professional always depends on the quality of the service.

Aims of ICT in academic library

The main aims of ICT in library means implementing of ICT equipments and tools in information provide process as a media and methodology. The purpose of ICT in library is generally to familiarize users with the use and working of computers and other electronic medium. Today library using the term ICT to indicate

Librarian, R.R P.G Collage Amethi (U.P.)

their specializations in the process of information seeking. Due to the application of ICT in library, users are taught to use different information based software and how ICT can be used to solve problems regarding information. It is also a help to users to collect the data in short period of time.

Advantages of ICT in academic library

User can be access multiple type of information at a simultaneously the Main mottos of ICTs. They can group of libraries are sharing of information with appropriate protocols and large number of digital information provide to the users. All the digital information is preservation with the help of hardware and software. ICT has provided new media, new modes of storing and communicating information.ICT brought many services to library to speed up their activities. It helps to remove barrier of communication, distance and time. The advances in technology will continue to improve the effectiveness of libraries. Help to transfer data to communication network like internet Anywhere. It provides enormous search speed and facilities. It helps to strengthen communication and collaboration among research, government and educational institutions. Provision of speedy and easy access to information. Provision of remote and round the clock access to users .Provision of access to unlimited information from different sources.ICT enable easier, faster, cheaper and more effective library operations. ICT helps to manage information overload as information retrieval is made easier in computerized systems.

ICT Services Academic Libraries

1. Automated library services
2. Internet
3. In-house databases
4. CD-ROM databases
5. Subscribed databases
6. Library network links
7. Multi-media facilities
8. Microform services

Use of ICT Tools

Academic libraries are facilitating more timely exchange of information among scholars and improve distance learning without any geographical barrier. It supports teaching, learning and research while reaching unreachable without walls. Communication technology Voice mail,Telephone ,fax, video conferencing, internet,remote centerl technology, socialmedia, libaraysecurity ,RFID technology, QR Quick response code technology. Academic library has become center piece of any university, research institute as never before and growing at a tremendous speed. The services provided by the academic libraries are changing according to the day to day user needs and becoming very essential.

Challenges of Using ICT for Provision of Academic Library Services

There is awareness that a lot of benefits are derived, through the adoption and use of Information and Communication Technologies (ICTs) in libraries, Limited Financial Resources: The acquisition and maintenance of the relevant equipment depends on the availability of fund. Mostly, there is paucity of funds in many academic libraries .connect to the internet, make subscription to various online database and obtain software licenses.

- Insufficient bandwidth.
- Lack of technical IT knowledge by library staff.
- Constant change of software and hardware.
- Copyright and intellectual property right management

Conclusion

Information communication technology is not only a technology but also it manages with the library objectives with the adoption of ICT, libraries can face the new and modern information techniques. ICT has greatly affected the information environment. Librarians must have the knowledge,skills and tools in handling digital information and that will be the key success factor in enabling the library to perform its role as an information support system for society. With the ICT in place, the objectives of libraries will not only be achieved but it will also help libraries to compete with their counterparts in the developed world.In the change

scenario under the influence of ICT.The duties of the librarian changed the librarian is going to work as information broker.

Reffernces

1. *Deshmukh, Vijay. M, 2010 'ICT and College Library, Role of College Librarian in the information Network Era proceedings. UGC sponsored state level conference, Nagpur : V.M.V. Commerce, J.M.T. Arts & J.J.P. Science College, 6th September, pp 26-27.*
2. *Jain, P.B., 2010. 'ICT & Its Impact on Academic Libraries, Role of College Librarian in the information Network Era proceedings. UGC sponsored state level conference, Nagpur : V.M.V. Commerce, J.M.T. Arts & J.J.P. Science College, 6th September, pp 28-30.*
3. *Kaula P.N. 1997. 'Information and Communication Technology Impact and Challenges', University News, Vol. 35 No. 35, pp. 1-5.*
4. *Tekale K.U., Veer D.K., Rathod S.N., 2010. 'Impact of information communication and technology on library and library services. Academic Libraries on New Horizons Conference Papers Seventh State level Conference of Library and Information Science Study Circle, Amravati, 2-3 January, pp. 133-136*
5. *Barry, C.A. and Squires, D (1995). Why the move from traditional information seeking to the electronic library is not straightforward for academic users: some surprising findings. in Raitt, D.I and Jeapes, B (Eds) Online information 95: 19th International online information meting proceedings, London 5-7 December. Oxford: Learned Information.*
6. *Dede, C (2000). Emerging technologies and distributed learning in higher education. In D. Hanna (Ed.), Higher education in an era of digital competition: Choices and challenges. New York: Atwood.*

Manglam-Year 12(02) Vol.XXII, Feb.2021
ISSN-0976-8149, P.26-33

Ancient Structures and Traditional Water Conservation System of India

Dr.Deepti Jaiswal *

Abstract

Water is very essential for life of every living being on this earth. It is true that from the very beginning of our civilisation, Indians have made intimate and absolute connection with water not for just our survival but also religiously, culturally, spiritually and aesthetic purposes.

India has a rich heritage of water conservation which included efficient techniques of water conservation in ancient times which were used for irrigation and water supply. Many traditional techniques, though less popular today, are still in some places. Water harvesting has been practiced since time immemorial. Archaeological evidence shows that the practice of water conservation is deep rooted in the science of ancient India. Excavations show that the cities of the Indus valley civilisation (3000-1500 B.C.) had excellent systems of water harvesting and drainage. In present scenario water harvesting is a key element of any strategy that aims to alleviate the water scarcity crisis in India. With rainfall patterns changing almost every year, it is needed to revive the traditional systems of water harvesting in the country. These traditional techniques are not only simple and eco-friendly for the major part, but also highly effective and good for the environment. The current study provides a historical overview of water management at Dholavira, a Harappan-era archaeological site in Kutch, Gujrat, which was on the UNESCO list of world heritage sites over time and also detailing out challenges in water management in the current context and suggesting future options. In the crisis of water availability in India, it is very important to look into traditional water conservation systems. This can be helpful to provide an insight of applying these techniques of water conservation system.

Keywords: Water conservation, Water harvesting, Traditional system, Indus Valley Civilisation

Introduction

Our ancestors from ancient India have invented so many useful things, whose references are being used in combating modern day

Guest Faculty, Department of History, Khwaja Moinuddin Chisti Language University, Lucknow (U.P.)

problems. Water conservation methods are one such area the pages of ancient India. From the very beginning of our civilization, Indians have made intimate connection with water, not for just survival but also religiously, culturally, spiritually and aesthetically, India's incredible water heritage since time immemorial, which also finds mention in our text and scriptures. The concept of water conservation was imbibed into the cultural fabric, also revering water as a goddess. Such was the harmony between humans and Mother Nature.

India, beings an agricultural country, its economic development is linked with agriculture. A growing population and consequent need for increase in food production requiring increasing area of agricultural fields and irrigation are resulting in over use of water, due to over explanation of water resources, it has become scarce in many parts of country, so in this condition we mesmerize our glorious part of water management and conservation which reminds us how naturally abundant we are and what magnificent riches can reaped through successful management of these resources.

The history of water management in India goes back a long way, before some civilization had even began setting down as organized societies. The cities of Indus valley civilization like Harappa, Mohanjo-daro,Dholaviraetc were old yet developed cities. Most houses of Indus valley were made from mud, dried mud bricks or clay bricks. The drainage systems, wells and water storage systems are ahead of its time.

Dholavira in the Gujarat state has well documented storage reservoirs in the form of lakes to collect surface run offs during the rainy season not only that, there were intricate channels and check dams for various purposes. Such structures have also been found in other sites such as Harappa and Mohenjo-Daro. There was enough evidence to show that left to them, people were not only able to conserve and manage their water resources equitably, but also meet the local needs through community owned systems of management. Each of these unique systems based on the local environment ensured that individual needs were met through an

equitable management of the collective resource. Documenting indigenous methods of water conservation is today a stark necessity.

The excellent water harvesting and drainage systems in the cities of Indus valley civilization are masterpieces of their time and were so prominent that even today's modern day water harvesting structures can be based upon their design. This is just one example; let us see what other water conservation techniques were practiced by our ancestors and how effective are they. One thing is certain; water crisis is impending the future. In order to avert this, we must revisit and learn from the practices used in the past. Select water conservation methods can then be adapted to the present day situation.

Methodology

The various methods of water conservation and water supply systems in terms of the following are highlighted:-

1. Drains & water sewage systems
2. Wells in ancient structures
3. Water harvesting systems
4. Public bathing areas.
5. Baolis

It describes an alternative emerging present in which policy making and design work together to recognize and build on traditional knowledge and skills while imaging how such efforts will help us develop sustainable futures for cities, landscapes and bodies of water.

Drains & Water Sewage System

The drainage system was one of the most remarkable features of the mature Harappan city. All the streets and lanes across neighbourhoods in Mohanjo- daro had drains. In addition there was also provision for managing waste water inside the house with vertical pipes in the walls that led to chutes opening on the street as well as drains from bathing floors that flowed towards the street drains. The street drains were typically made of baked brick, with special shaped bricks to form corners. The bricks were closely fitted and sealed with mud mortar. The drains were mostly covered

by a layer of baked bricked which was laid flat across the side walls of the drain. Wider drains were covered with limestone blocks. These were then covered with a layer of mud, such as that at the great bath, a corbelled arch was used and where it cuts near the granary. Every house had its own soak pits which collected all the sediments and allowed only the water to flow into the street drains.

(A) Waste water at Lothal

Lothal is supposed to have the earliest dock in world history. The dockyard at Lothal is a remarkable lined structure with evidence of channels for inlet and outlet of water. Small bunds were built by local people to store rain water for irrigation and drinking. For their renowned draining system, Lothal engineers provided corbelled roofs and an apron of kiln fired brick face of the platform where the sewerage entered the cesspool. Wooden screens inserted in grooves in the side drain walls held back solid waste. The well is built of radial bricks, 2.4 meters (7.9 feet) in diameter and 6.7 meter (22 feet) deep. It had an immaculate network of underground drains, silting chambers and cesspools, and inspection chambers for solid waste. The extent of drains provided archaeologists with many dues regarding the layout of streets, organization of housing and baths. On average, the main sewer is 20-46 cm (7.9- 8.1 inch) in depth, with outer dimensions of 86x68x33 cm (34x27x13 inches). Lothal brick makers used a logical approach in manufacture of bricks designed with care in regards to thickness of structures. They used as headers and stretchers in same and alternate layers.

(B) Dholavira storm water drainage in the castle

The site was discovered in 1967-68 by I.P. Joshi ex D.G. of A.S.I. and is the fifth largest of eight major sites and now in 2021 it is declared one of the heritage sites by UNESCO. It has been under excavation since 1990 by the archaeological survey of India which opens that "Dholavira had indeed added new dimension to personality of Indus Valley civilization."

The kind of efficient system ofHarappa's ofDholavira, developed for conservation, harvesting and storage of water speaks eloquently about their advanced hydraulic engineering given the state of technology in the third millennium BCE.

Dholavira is the sophisticated water conservation system of channels and reservoirs, the earliest found in anywherein the world, built completely of stone, a semi-arid region, received an average of 260 mm rainfall annually. With saline subterranean water, scarcity of potable water and no perennial water sources, ancient Indians settled there managed the crisis well. Two storm water channels, Manhar (north) and Mansar (south) flanked the city. The city was laid out on a 13 m gradient (higher in the east to lower in the west), ideal for reservoirs. To collect the monsoon runoff from these storm channels, a series of 16 reservoirs were built between the inner and outer walls of the city. That amounted the collection of 250,000 cu.rr. of water ! air apertures were created through large storm drains inside the inner city for easy passage of rain water. There are no match such grand water engineering marvels which are developed by our ancient brilliant ancestors.

Wells in Harappa and MohanJo-daro

A large public well and public bathing platforms were found in the southern part of Mound AB at Harappa. These public bathing areas may also have been used for washing clothes as in common in many traditional cities in Pakistan and India today.

Water harvesting system (For Forts & Places of Worships)

All forts builts in different terrains and climatic conditions had elaborate arrangements for drinking water. Those built an hilltops or in rocky terrain depended mainly on rain water harvested from surrounding hills. The formidable and well-fortified Chittor fort that served as Mewar's defence, nestled in the Aravalli hills at a height of about 152m at the eastern border of Thar desert is spread across 700 acres. Now it has 22 reservoirs exist out of 84 water bodies which can store 4 billion litres of water. The reservoirs include stepwells (baories), wells (Kunds) and ponds (talabs). Also Amber fort and Jodhpur fort has marvellous engineering of water harvesting arrangements. Centuries later, many houses in Rajasthan had rooftop rainwater harvesting systems. In Burhanpur, Golkonda, Bijapur, Aurangabad etc underground earthen pipes used to carry water to faraway places. In the chandragiri fort in Andhra Pradesh, built in the 10th century, trees around water reservoirs minimised

loss due to evaporation, and lotus plants in the reservoirs and purified the water.

Water harvesting systems were also built on top of the roofs of the houses in ancient India. This practice is still followed in many parts of the country. Few of the ancient water harvesting methods that are still in use today are Jhalaras, talabs and village ponds, taankas, eri tanks, johar, ahar pynes and the list goes on. Then there are various traditional water harvesting techniques unique to regions, practiced across India.

Water is also an absolute necessity in the deities of Hindu worships and many performances have done through water or can say water rituals like worships of water bodies, Jal yatras on Bhagwat pooja and Jal yagya etc.

Public bath (Great Bath)

The great bath is without doubt the earliest public tank in the ancient world. The tank itself measures approximately 12m deep north-south and 7m wide, with a maximum depth of 2.4m meters two wide staircases lead down into the tank from the north and south and small sockets at the edges of the stairs are thought to have held wooden planks or treads. At the foot of the stairs is a small ledge with a brick edging that extends the entire width of the pool. People coming down the stairs could move along this ledge without actually stepping into the pool itself. Water for filling the Great bath came from a large well situated in one of the rooms fronting the open courtyard baked brick drain in the south western portion of the bath served to carry away the waste water.

Baolis

These are another method of water heritage which is rightly referred as India's forgotten water temples, many of which are almost redundant today. Baoli was an another stepwell structure, beautifully created into arches, carved motifs and at some places, rooms on either side. A Baolirepresent different significance, based on location like a village baoli was used for social gatherings and utilitarian purposes; a baoli on trade routes served as a resting place. This structure was open for the free drawing of water by people of any religion or caste. ChandiBaori(Rajasthan),

AgrasenkiBaoli(Delhi), Rani kiVav(Gujarat), HampiPushkarani and (Karnataka)are some famous Baoli.

Conclusion

These water harvesting practices should be perceived by the common man as his sacred duty and by the communities as part of good local self-governance and social responsibility. To ensure water conservation of water, religious norms and social duties were set down by ancient Indian scriptures. This is exactly what we mean by community participation or participating management professed by today's environmentalists.However, even when our government is trying to tackle the problem by various means like making rainwater harvesting mandatory some people do not realize the seriousness of the issue.

The management of water is not simply about building more dams, or laying pipelines to take the water to our cities and then pipelines to flush the waste from our homes. The management of water is about building relationship of society with its water, so that we can understand the value of each raindrop and understand that unless we are prudent, indeed frugal with our use of his precious resource, there will never be enough water for all. It is the time to build the technologies to maximise the use of water and dedicate ourselves to the cause of water conservation. So there ismuch needed to re-learn and apply to the water conservation techniques from our glorious past.

Refeernce

1. *Agrawal, Anil and Sunita Narain., Dying Wisdom : Rise, Fall and Potential of India's Traditional WaterHarvesting Systems. (State of India's Environment–A Citizen's Report. No. 4), Centre of Science and Environment (CSE), New Delhi.1997*
2. *Bisht, RS 'Dholavira- New Horizons of the Indus Civilization' Articles on Dholavira/Puratattva, 20, pp. 71-82,1991; 'Dholavira', Indian Archaeology – A Review 1991- 92, pp. 26-35, 1996; etc. Historical studies pertainingto Water Architecture.*
3. *Iyengar. S:, 'Waternama'- A Collection of Traditional Practices for Water Conservation and Management inKarnataka.2007*
4. *http://proxied.changemakers.net/journal/03july/chandragiri.cfm*
5. *http://pubweb.cc.u-tokai.ac.jp/indus/english/2_4_02.html*
6. *http://www.boloji.com/environment/162.htm*

7. *http://www.downtoearth.org.in*
8. *http://www.indiatogether.org/opinions/guest/sriramv0802-1.htm*
9. *http://www.trinet.in/modules/news/article.php?storyid=910*
10. *https:// www.google.co.in*
11. *https://www.thehindu.com.*
12. *https://www.wikipedia.org.*
13. *https://www.esamskriti.com/e/Culture/Indian-Culture/WATER-Conservation-in-India,-then-and-now----1.aspx*
14. *https://www.myindiamyglory.com*
15 *Nair K. Shadanaanan. "Role of water in the development of civilization in India—a review of ancient literature, traditional practices and beliefs ."The Basis of Civilization ~ Water Science? (Proceedings ol'the UNI-SCO/1 AI IS/I Wl IA symposium held in Rome. December 2003). I Al IS Publ. 286. 2004 (2004).*
16. *https://www.harappa.com/blog/mohenjo-daro-street-drains*

Manglam-Year 12(01) Vol.XXII, Feb.2021
ISSN-0976-8149, P.- 34-40

Examine The Effectiveness Of Structured Curriculum Program On Health Aspects Of S.B.A. Among Art's Students

(With special reference of R.D.G.D.C. Hathras)

Lalit Kumar Goyal*

Abstract

Health and cleanliness are the most important factors for the overall well being and development of mankind. Without proper hygiene we cannot keep the environment around us clean and protect our self from disease. Aim of the study to examine the effectiveness of structured curriculum program on Health aspects of Swachh Bharat Mission among arts students. Method was a total of 60 students were taken in this survey .Pre-experimental equipment (pre-intervention and post-intervention) was used. The study was conducted at Rameshwar Dayar Girls Degree College in Hathras District. Data were collected through a questionnaire on arts student knowledge about the health aspects of the Swachh Bharat Mission. The results disclosed that, out of 60 arts students majority of 42 (70%) were had inadequate knowledge, and 12(20%) were had moderate knowledge and only 6(10%) were had adequate knowledge before structured curriculum program. As well as after curriculum program majority of the students 45(75%) were having adequate knowledge, 9(15%) were having moderate knowledge, and only 6(10%) were having inadequate knowledge respectively. Conclusion and recommendation are the execution of the basic infrastructure of the curriculum program has been very effective and the curriculum program has really improved the technical knowledge of the health aspects of Swachh Bharat Mission in the arts students. The study recommended that a comparative study could be done between urban and rural areas; similar study should be done by organizing camps of Swachh Bharat Mission in large and rural areas.

Key words: Swachh Bharat Mission**,** Structured curriculum program, arts students, health aspects.

Introduction

The concept of sanitation was earlier limited to disposal of human excreta pools, open ditches, pit latrines, bucket system etc.

****Research Scholar- Department of sociology, K.G.K.college Moradabad***

Today connotes a comprehensive concept, which includes liquid and solid waste disposal, food hygiene, personal hygiene, domestic as well as environmental hygiene. Proper sanitation is important not only from the general health point of view but it has a vital role to play in our individual and social life too. Sanitation is one of the basic determinants of quality of life and human development index. Good sanitary practices prevent contamination of water and soil and there by prevent diseases. The concept of sanitation was, therefore, expanded to include personal hygiene, home sanitation, safe water, garbage disposal, excreta disposal and waste water disposal.

Sanitation and drinking water are closely related to each other. If we talk about cleanliness, we cannot keep drinking water separate. We will have to discuss about this as well. If we do not have proper sanitation around us, then the environment around us gets contaminated, due to which the drinking water available there also gets polluted. By which people getting sick. However, the policy on sanitation and drinking water has been made by the central government till now. But they have been insufficient.

According to the Census of India 2011, the urban population of India is 377 million i.e. 31% of the total population. According to estimates it is expected to be 600 million by 2031. According to the 2011 census, about 80 lakh households in 4041 statutory cities of India do not have toilets. Citizens of cities have to pay the cost of poor sanitation in cities because of the deteriorating condition of their health. The biggest cause of uncleanliness is the lack of proper disposal of sewage and waste from cities. The cost involved in proper disposal of sewage and waste is also a major problem.

In India, the problem of cleanliness is very old; it was a problem even before independence. After independence, in 1986, a program was started to remove the problem of cleanliness, which was named Central Rural Sanitation Program (CRSP). This program went ahead through the Total Sanitation Program in 1999, then through the Nirmal Bharat Award of 2003, and then through the Nirmal Bharat Abhiyan in 2012, it evolved to the Swachh Bharat

Abhiyan in 2014. The Swachh Bharat Abhiyan was launched by Prime Minister Narendra Modi on the birth anniversary of Mahatma Gandhi on 2 October 2014, with the aim of bringing cleanliness in the country by 2019. The objective of this program was to make every family of the country aware of cleanliness, to make the country free from open defecation, proper disposal of solid and liquid waste, whether it is a city or a village. Construction of public and community toilets, achieving cleanliness through government support for individual toilets was the main objectives of this country wide sanitation program.

Health can be improved only by cleanliness; cleanliness remains a big challenge for society and environment even today. Only by improving health can the path of progress of the country and individual be opened. Unless a person is physically and mentally healthy, then he cannot contribute well to the society. Areas related to human welfare such as education, mobility, livelihood, income etc. are all directly related to cleanliness. In the absence of better health and better sanitation, the development of all things related to human welfare stops.

Socio economic costs and Benefits of sanitation

In India 60 % of the environmental health burden is caused by the lack of access to safe drinking water and adequate sanitation. The single major cause of this burden of disease is diarrhea, which disproportionately affects children under the age of five [1].Each year an estimated 180 million person –work days are lost due to the incidence of water bone disease. This has been estimated to cost the Indian economy Rs 12 billion. [2]

Studies that have sought to document the socioeconomic benefits of providing sanitation include a World Bank study that used available evidence from 172 demographic and health surveys in 70 countries. The authors found that the provision of adequate water and sanitation services reduced the odds of children under the age of five suffering from diarrhea by 7.3 percent and 12.9 percent respectively. similar reductions were observed in the mortality risk for children under five .They conclude that from a "….*public health perspective ... sanitation infrastructure should*

in our opinion receive more attention ,as the private health benefits of sanitation seem to be at least equal to the benefits of water infrastructure , while the social welfare spillovers are likely substantially larger".[3]

Impacts on Indian Economy

This campaign has given financial benefits with cleanliness and boosted Indian economy. It has major objectives of putting India in to league of national working towards technology development for future.

1. Swachh Bharat Mission campaign will help in generating employment and boost GDP through Tourism because approx.6.0% of India's GDP and 40 million Indians are directly employed in this sector.

2. The GDP also increases significantly. More people get jobs and more income earned both by the state by the way of tax and the employee too by way of salary.

3. It helps to attract Foreign Direct Investment and create positive BOP.

4. This campaign will be affected especially in rural/ village areas because it creates awareness about cleanliness in the peoples and peoples are very aware about the jeopardy of open defection. This employment development is increasing in the economy.

5. Swachh Bharat mission can alleviate the burden on existent health care facilities which will help to encourage Indian economy.

6. Swachh Bharat Mission will pursuit to healthy India which in turn accessions productivity of Indians. High productivity enforces high earning potential.

7. For making toilets raw materials are used i.e. cement, tiles and sanitary wares, which generate employment and support industries. This reflects the economy and GDP.

Review of Literature

Rao and Subbarao (2015) '05' studied the issues and concerns of Swachh Bharat Ahiyan. The study concluded that Citizens, media, social media, civil society, organizations, professionals, youth, students, and teachers have the ability and responsibility to declare

their responsibility for the movement by simply reporting manual cleanup cases.

Thakkar (2015) '06' studied the objective, merits and importance of Swachh Bharat Mission.The study concluded that The mission of Clean India or Green India is an important step taken by the Modi government.

Evne (2014) '07' studied the objective of Swachh Bharat Abhiyan. The study concluded that Citizens of every country should be clean and hygienic, thinking about progress, rather than waiting for the government to make this plan successful.

Tayal D.K & Yadav S.K. (2017) '08' studied the Sentiment analysis on social campaign Swachh Bharat Abhiyan using unigram method. The study develop a sentiment analysis tool namely SENTI-METER. This tool estimates the success rate of social campaigns based on the algorithms. This tool computes an elaborated analysis of Swachh Bharat Abhiyan, which examines the success rate of this social campaign.

Objectives

1. To assess the knowledge on Health aspects of Swachh Bharat mission among Arts students by pre test.

2. To examine the effectiveness of structured curriculum program on Health aspects of Swachh Bharat mission among arts students by post test.

Hypothesis

There is a significant difference between pre-test and post-test knowledge scores of arts students on knowledge regarding Health aspects of Swachh Bharat mission.

Material And Methods

Pre-experimental equipment (pre and post intervention) was used. A total sample of 60 arts students were taken in the study. The study was conducted at Rameswar Dayal Girl's Degree College in Hathras. Data was collected through a structured questionnaire of arts students' knowledge towards Health aspects of Swachh Bharat mission.

Pre test

S. No.	Test	Level Of Knowledge	Frequency	Percentage	Mean	Standard Deviation
1.	Pre test	Inadequate	42	70.00	16.44	6.43
		Moderate	12	20.00		
		Adequate	6	10.00		
		Total	60	100.00		

Post test

S. No.	Test	Level Of Knowledge	Frequency	Percentage	Mean	Standard Deviation
2.	Pre test	Inadequate	6	10.00	31.04	5.51
		Moderate	9	15.00		
		Adequate	45	75.00		
		Total	60	100.00		

Results

In pre-test out of 60 arts students, majority of (70%) had inadequate knowledge on Health aspects of Swachh Bharat Mission, and (20%) had moderate knowledge and only 10 percent had adequate knowledge.

For post-test knowledge, majority of (75%) students were having adequate knowledge, (15%) were having moderate knowledge, and only few students 15 percent were having inadequate knowledge on health aspects of swachh Bharat mission among arts students after structured curriculum program.

Pertaining to Pre-test mean score was 16.44 and Standard Deviation was 6.43. Post-test mean score was 31.04, and Standard Deviation was 5.51. The t- value was 18.080 and the p- value was >0.01 hence research hypothesis was accepted. It evidence that the structured curriculum program is significantly effective on improving knowledge regarding health aspects of swachh Bharat mission among arts students.

Conclusion

In this study it is found that art students had not sufficient knowledge about health aspects of swachh bharat abhiyan before attending curriculum program. After completing curriculum program they got sufficient knowledge about health aspects of swachh bharat abhiyan. So it is very clear that there is a need to

organize such type program for improving the knowledge in college students. Without this, aim to achieve swachhta in all section of society will be incomplete since our students will be the leader of future.

Recommendations

On the basis of this study main recommendation is that we should give health related swachhta education to our Adolescent and youth as well as other societies groups like governments and private service class employee, rural and urban peoples, different class groups like upper, middle and lower class peoples, different religious groups like Hindu, Muslims, Sikhs, etc., deferent caste group. This health related swachhta education we could give by the organizing seminars, by showing shorts films, by conducting camps , by organizing quiz competitions etc.

Reference

1. *Planning commission , Eleventh five year plan, Vol.2, Chepter 5, Oxford University Press, New Delhi,2006 pp.162-183.*
2. *Dr. Ashish saxena , Sociology of Sanitation, Kalpaz Publication Delhi,2015 p.238.*
3. *Gunther ,Isabel and Gunther Fink , " Water, sanitation and children's health : evidence from 172 DHS surveys", Policy research working paper 5275 , prospects group, Development Economic Group , The world Bank Washington 2010 DC,p.36.*
4. *Dr. Lakshman Chandra , Swachh Bharat:Modi's clean India Mission, Aavishkar Publications Distributors Jaipur 2019 ,p.86.*
5. *Rao and Subbarao , "Swachh Bharat: Some Issues and Concerns", International Journal of Academic Research, ISSN: 2348-7666, Volume-2, Issue-4(4),2015 pp. 90-93.*
6. *Thakkar , "Swachh bharat [Clean India] mission – an analytical study", Renewable Research Journal, ISSN 2321-1067,Volume -3 ,Issue- 2,2015 pp. 168-175.*
7. *Kaleeram Evne ,"Swachh bharat mission and dalit community development in India", International Journal of Creative Research Thoughts, ISSN: 2320-2882, Volume -2, Issue-3, 2014 pp.341-345.*
8. *Tayal D.K & Yadav S.K. , Sentiment analysis on social campaign "Swachh Bharat Abhiyan" using unigram method, AI & SOCIETY, ISSN: 0951-5666, Vol-32, Issue-4, 2017 pp.633-645.*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-41-45

समाजीकरण में परिवार की भूमिका

*डॉ० राम चिरंजीव**

समाजीकरण वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करनासीखता है और समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। व्यक्ति जिस सामाजिक परिवेश में जन्म लेता है वह उस समाज की जीवन शैली को सीखता है। प्रत्येक शिशु जन्म के समय सिर्फ एक अस्थि–मांस का संगठित शारीरिक संरचना मात्र होता है। वह न तो स्वंय के बारे में न ही अपने समाज के बारे कुछ जनता है। सामाजिक गतिविधियों के संदर्भ में उसे किसी प्रकार की कोई जानकारी नहीं होती है, ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती है परिवार के सदस्य विशेष रूप से माँ उसे विभिन्न चीजों के बारें में बताती है और परिवार की दैनिक गतिविधियों में उसकी भागीदारी प्रारम्भ होती है। जब बालक दैनिक जीवन में अपने माता़पिता, संबंधियों पड़ोसियों एवं दोस्तों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज के बारे सीखने लगता है तब सीख की इसी प्रक्रिया को समाजीकरण कहते हैं। समाजीकरण के द्वारा ही कोई व्यक्ति जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी बनता है।

ठीस इसी प्रकार से कहा जा सकता है कि– "समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है जो सीखने वाले को सामाजिक भूमिकाओं के निभाने के योग्य बनती है।"[1]

कम्बाल यंग के अनुसार "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक एवं सास्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है, समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है और जिसके द्वारा समाज के मूल्यों और मानकों को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।"[2]

प्रसिद्ध वि़द्वान ड्रेवर के अनुसार "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करता है और इस प्रकार वह उस समाज का मान्य, सहयोगी और कुशल सदस्य वनता है।"[3] इस प्रकार समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एवं व्यक्ति और व्यक्ति एवं समाज के बीच अन्तः क्रिया होती है और व्यक्ति समाज की भाषा, रहन–सहन, खान–पान, सामाजिक मूल्य एवं आचरण की विधियाँ और रीति–रीवाज सीखता है और इस प्रकार वह समाज में समायोजन करता है। समाजीकरण के अभाव में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। समाजीकरण के अभाव में बालक कुमार्ग की ओर बढ़ने लगता है। परिवार के बारे में से देखा जा सकता है–

* *अध्यक्ष एवं असिस्टेन्ट प्रोफेसर –समजाशास्त्र विभाग, सी०एम०पी०कॉलेज, इलाहाबाद (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ०प्र०)*

युंग के अनुसार "बालक के समाजीकरण में परिवार सबसे महत्व पूर्ण साधन है, बालक अपने परिवार का ही प्रतरूप होता है। परिवार का विघटन बालक के समाजीकरण में बाधा डालता है। इसलिए विघटित परिवारों के अधिकतर बच्चे अपराधी प्रकृति के पाये जाते हैं।''[4]

हेली और ब्रोनर ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि "अधिकतर बाल अपराधी उन्हीं परिवारों में मिलते हैं जहाँ पर सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना में बाधा पड़ रही हो।''[5] यह धारणा हेली ब्रोनर के अनुसार थी।

आगे चलकर टरमन ने तो परिवार के बारें में यहाँ तक कह डाला है कि "केवल वही बच्चे विवाह को सुखपूर्ण बना सकते हैं जिनके मातादृपिता का पारिवारिक जीवन सुखी था।"[6]

इससे स्पष्ट कि बच्चे के समाजीकरण में परिवार की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है। परिवार बच्चों के समाजीकरण के लिए एक प्राथमिक एवं सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करता है। यह बच्चे का समाजीकरण करने वाली सबसे प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण संस्था है। बच्चों के सर्वांगीण विकास में परिवार की महत्व पूर्ण भूमिका होती है । परिवार में ही रहकर बालक अन्य सदस्यों के व्यवहारों का अनुसरण करता है और परिवार के सदस्य अपने व्यवहारों से उसके व्यक्तित्व को परिष्कृत करते हैं।

आज नैतिकता पर भौतिकता का प्रभाव इस प्रकार बढ़ता जा रहा है कि मानव अपने आर्थिक विकास की दौड़ में नैतिक मूल्यों को काफी पीछे छोड़ दिया है। प्रतिपल व्यक्ति अपने आर्थिक संबृद्धि की बात करता हैं चाहे वह कार्यालय में हो, घर पर हो या किसी पार्टी में हमेशा भौतिकता की बात करता है। यहाँ तक कि समाज में ऐसे लोग भी हैं जो अपने माता .पिता और बच्चों के लिए भी समय नहीं निकाल पा रहे है कि उनके साथ बैठकर कुछ विचार विमर्श एवं परिवार के सदस्यों के सुख–दुःख की चर्चा की जाए। अपने बच्चों के बीच बैठकर आदर्श, मूल्यों एवं नैतिकता की चर्चा करें। बच्चों का समाजीकरण करें। परिवार के प्रकार्य के संदर्भ में *प्रो. एस. सी. दुबे* कहते है कि "यह छोटों का समाजीकरण करता है इसी के परिवेश के भीतर वे समाज के प्रतिमानों को ग्रहण करते है तथा व्यवहार के उपयुक्त रूपों के अनुरूप आचरण करना सीखते हैं। परिवार अपने सदस्यों विशेषकर कम उम्र सदस्यों के बीच व्यवहार के विचलनकारी रूपों पर नियंत्रण करता है। परिवार अपने सदस्यों को आवश्यक भावनात्मक सहारादृस्नेह, प्रशंसा और प्रोत्साहन देता है।"[7]

आधुनिकीकरण इस भाग दौड़ की दुनिया में किसी के पास एक दूसरे को

समझने और समझाने के लिए एक पल का भी समय नहीं मिल पा रहा है और न ही कोई समय निकाल पा रहा है। अभिभावकों के पास काम का इतना अधिक बोझ ,घर और बाहर के कार्यो की जिम्मेदारियाँ है कि वे अपने बच्चों के लिए समय निकाल कर उनका समाजीकरण कर सके। ऐसे में परिवार ही एक ऐसा स्थान है जो बच्चों के समाजीकरण के लिए उपयुक्त हैं जहां पर बच्चे को जन्म से लेकर युवा होने तक या और आगे की उम्र तक दादा–दादी ,माता–पिता या परिवार के अन्य सदस्य बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए समय निकाल कर उसका पथ प्रदर्शन करते है। पारिवारिक संरचना का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। परिवार सामाजिक नियंत्रण के प्रबल माध्यम है जो जन्म से ही बच्चों को कुमार्ग पर जाने से रोकते है। किसी भी परिवार या राष्ट्र के लिए सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति है। व्यक्ति जितना मजबूत होगा परिवार, समाज और राष्ट्र उतना ही मजबूत होगा और सशक्त होगा। योग्य नागरिक बनाने के लिए आवश्यक है कि बालक को वचपन से ही उसके शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास के लिए उचित वातावरण एवं उचित समाजीकरण हो।

परिवार बच्चे का समाजीकरण करने वाली सबसे प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण संस्था है। बच्चों के सर्वांगीण विकास में परिवार की महत्व पूर्ण भूमिका होती है। परिवार में ही रहकर बालक अन्य सदस्यों के व्यवहारों का अनुसरण करता है और परिवार के सदस्य अपने व्यवहारों से उसके व्यक्तित्व को परिष्कृत करते है। जैसा कि सी. एच. कूले ने कहा है किसी भी परिवार की सामाजिक सामर्थ्य उसके बुजुर्ग सदस्यों पर होती है। बुजुर्ग व्यक्ति बच्चे के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक मजबूती प्रदान करने का उत्तरदायित्व वे स्वयं अपने कंधों पर लेकर बच्चे का सर्वांगीण विकास करते है। घर के बड़े बुजुर्ग माता–पिता बच्चे को सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह की शिक्षा देते हैं। यहाँ तक कि बुजुर्ग बहुओं को पारिवारिक जीवन से संबन्धित जानकारी उनकों प्रदान करती हैं। किस प्रकार से सामाजिक दायित्वों का निर्वहन किया जाये ये सभी बातें परिवार में बताई जाती हैं। बुजुर्ग व्यक्ति बच्चों को प्यार, धैर्य, सम्मान, परोपकार, शांति, ईमानदारी, नैतिकता, शिक्षा और सद्‌गुणों का विकास आदि की जानकारी खेल खेल में ही बता दिया करते थे। पारिवारिक झगड़ों को शांत कराकर उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

परिवार ही वह स्थान है जहां से समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और सामाजिक मूल्यों का निर्माण होता है यही वह स्थान है जहां पर निःस्वार्थ भाव से बच्चे को प्रारम्भ से ही उसमें आदर्श मूल्यों, विचारों और सामाजिक मानको के अनुरूप व्यवहार करना सिखाया जाता है जिससे वह समाज में

आदर्श मूल्यों के अनुसार व्यवहार करता है। परिवार बच्चों का उचित समाजीकरण करके लोगों और समाज के प्रति उनके दृष्टिकोणों को नया आकार देता है, सृजन करता है और उनके मानसिक विकास में सहयोग देता है और उन्हीं के अनुसार बालक व्यवहार भी करना प्रारम्भ कर देता है। परिवार का वातावरण बच्चे के सर्वांगीण विकास में मदद करता है एव बालक वही सीखता है जो अपने आस–पास देखता है।

परिवार में बड़े बुजुर्गों की उपस्थिति बच्चों के सामाजिक, मानसिक व नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुये उनमें सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है और साथ ही साथ सामाजिक मूल्यों को आत्मसात करने एवं और नकारात्मक मानसिक प्रवृतियों को दूर करने में मदद करता है। माता–पिता व परिवार के बड़े बुजुर्ग जब बच्चों के समाजीकरण कर उन्हें समाज का योग्य व सशक्त नागरिक बनाते हैं तब हमारी जिम्मेदारी भी होती है कि हम अपने बुजुर्गो की भी देख–भाल अच्छे से करें। जहाँ परिवार बच्चे का समाजीकरण करता है वही हमारी भी जिम्मेदारी है कि पारिवारिक संरचना को स्वस्थ व मजबूत बनाएँ क्योकि मजबूत संरचना वाले परिवार ही बच्चों का उचित समाजीकरण कर सकते हैं। तमाम समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि अधिकतर बाल अपराधी टूटे हुये परिवार से आते हैं। कामयाबी के सफर में परिवार का बड़ा महत्व होता है।

वर्ष 1936 में पंडित महामना मदन मोहन मालवीय हरिद्वार के गुरुकुल कांगड़ी के एक सम्मान समारोह में छात्रों को संबोधित करते हुये कहा कि "जो बुजुर्ग उनके सामने आए उनका वे सिर झुका कर अभिवादन करें। जो व्यक्ति या समाज अपने बुजुर्गो का, माता–पिता व गुरु का सम्मान करता है, वह स्वयं अभिवादनशील बनता। ऐसा करने वाले की आयु, विद्या, यश तथा शक्ति अवश्य बढ़ती है।"[8]

निष्कर्ष

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि माता–पिता और अन्य बुजुर्गों का सम्मान करें उन्हें अपने साथ परिवार में रखे, भले ही वे इस उम्र में आपकी आर्थिक व शारीरिक सहायता नहीं कर सकते लेकिन वे आप को व आपके बच्चों एवं आने वाली पीढ़ी को वह संस्कार देगे जो आप की संपत्ति से कई गुना अधिक मूल्यवान होगी। उनका दिया हुआ ज्ञान व संस्कार अमूल्य है जो बच्चों को द्वितीयक सस्थाओं में पैसा देने के बाद भी नही प्राप्त हो सकता है और वही हमारे बुजुर्ग स्वाभाविक रूप से बच्चों को देते रहते है जो उनके जीवन की

स्थायी पूँजी होती है। परिवार में बड़ों का स्नेह, सहयोग, मार्गदर्शन और आशीर्वाद हमारे लिए सबसे बड़ा उपहार है जो उन्हे अपने पास रखने से स्वतः मिलता रहता है। इसलिए देवतुल्य अपने बुजुर्गो को बृद्धा आश्रम जाने से रोके, उन्हे अपने पास रखे उनका सम्मान करे। संपत्ति आप को सदैव मिलती रहेगे लेकिन माता–पिता सदैव नहीं रहेगे इसलिए जब तक है तब तक उनका आशीर्वाद प्राप्त करें। आर्थिक विकास के साथ–साथ भावनात्मक विकास आवश्यक है। जब तक नैतिक मूल्यों का विकास नहीं होगा तब तक देश व समाज का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है, जो परिवार द्वारा ही सम्भव है।

सन्दर्भ

1. *सिंह जे. पी., समाजशास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2013 पेज 114*
2. *गुप्ता एम. एल. एवं शर्मा डी. डी., समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्सः आगरा, 2009 पेज 261*
3. *प्रो. लाल आर. बी., शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार,आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2008 पेज 433*
4. *डा. मिश्रा उषा, . शिक्षा का समाजशास्त्र, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2017 पेज 29*
5. *डा. मिश्रा उषा, (शिक्षा का समाजशास्त्र, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2017 पेज 29*
6. *डा. मिश्रा उषा, शिक्षा का समाजशास्त्र, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2017 पेज 29*
7. *प्रो. दुबे एस. सी., भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए–5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली, 2005 पेज 64*
8. *अमर उजाला, 2021 समाचार दैनिक, अखबार दि0 14 जुलाई 2021 पेज 8*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-46-54

मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति तथा भक्ति आन्दोलन

*डॉ० रविन्द्र कुमार गौतम**

सारांश

मध्यकालीन भारतीय समाज मुख्यतः दो धर्मो हिन्दू एवं इस्लाम धर्म के अनुयायियों का समाज था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही जहाँ एक ओर भारतीय प्रशासन ने महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है, वहीं दूसरी ओर समाज एवं संस्कृति में भी परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है। दो भिन्न धर्मों के लोग जब एक साथ रहना प्रारम्भ किये तो वे एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना नही रह सके। इस कारण एक नयी संस्कृति का विकास हुआ, जिस इण्डो इस्लामिक संस्कृति कहा गया। मध्यकालीन हिन्दू समाज जाति–पात, ऊँच–नीच, छूआ–छूत तथा आडम्बरों से भरा हुआ था। इस प्रकार मुस्लिम समाज भी इस्लाम की मूल भावना से भटक गया था। उक्त दोनों धर्मों/समाजों में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने में भक्ति संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन भक्ति संतो में सबसे प्रमुख कबीर, गुरूनानक, रैदास, चैतन्य महाप्रभु प्रमुख थें। कबीर दास समाज में व्याप्त आडम्बर पर कठोर प्रहार करते हैं। वह कर्मकाण्ड के विरोधी थे। कबीर का प्रयास था, कि हिन्दू–मुस्लिम में समन्वय स्थापित हो। वह निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। इसी प्रकार गुरूनानक ने हिन्दुओं एवं मुसलमानों में एकता स्थापित करने का आजीवन प्रयास किये। नानक की धर्म की अवधारणा अत्यन्त व्यवहारिक एवं कठोर रूप से नैतिक थी। इनका प्रमुख उद्देश्य हिन्दू एवं मुस्लिम में समन्वय स्थापित करना था।

इसी प्रकार महाप्रभु चैतन्य ने हिन्दू मुसलमानों में सम्प्रदायिकता तथा ऊँच–नीच की भावना को समाप्त कर समाज में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थें। इनका मानना था कि पूजा, प्रेम और भक्ति गीत एवं नृत्य में निहित है। इसी प्रकार समकालीन भक्ति संत रैदास सभी बाह्य कर्मकाण्डों जैसे–तीर्थ, व्रत, सिर मुड़ाना, मंदिनों में नाचना–गाना, मूर्तियों को पत्ते चढ़ाना को त्याग कर स्वयं को ईश्वर में खोकर ईश्वर की भक्ति करना जरूरी था।

मध्यकालीन भारतीय समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त था– हिन्दू और मुसलमान। हिन्दू समाज का मूल आधार जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था थी। इसके साथ ही साथ समाज में कई जातियाँ और उपजातियाँ भी थीं। समाज की जिस जाति में व्यक्ति जन्म लेता था, वह उसी जाति का व्यवसाय करता था, उसे वह परिवर्तित नहीं कर सकता था। विदेशी मुस्लिम शासन से, समाज, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये, हिन्दू रक्त की पवित्रता बनाये रखने के लिए जातियों के नियम और नियंत्रण अब पहले की अपेक्षा अधिक जटिल कर दिये गये थे। समाज में जातियों के अनेक विवेकशून्य नियंत्रण, रीतियाँ, परिपाटियाँ बन गयी थीं। हिन्दुओं के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को जाति–प्रथा के नियमों और

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, श्यामेश्वर महाविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

नियंत्रणों में जकड़ दिया गया था। किसी हिन्दू के लिए अपने जीवन में उत्कर्ष, परिवर्तन या नवीनता के लिए जाति के नियंत्रणों के बोझ से मुक्त होना कठिन कार्य था।

हिन्दू समाज में मुख्यतः दो भाग माने जाते थे। एक भाग द्विज का था, द्विज अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने वाले, कुलीन पवित्र उच्च वर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग तथा दूसरा भाग द्विजेतर वर्ग था। इसमें शुद्ध, नीच, अन्त्यज, अपवित्र, अछूत और हीन व्यवसाय करने वाले लोग थे। ब्राह्मणों के द्वारा धार्मिक और सामाजिक कर्मकाण्ड–पूजा–पाठ, अध्ययन, अध्यापन, मोक्ष का मार्ग दिखाना, विभिन्न संस्कारो को सम्पादित करते थे।[1] समाज में ब्राह्मण पूजनीय माना जाता था, चाहे वह निरक्षर हो, दुराचारी हो या सदाचारी। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊँचा था।

हिन्दू समाज में वैष्णव, शैव, शाक्त और जैन धर्म का प्राधान्य था। इनके अतिरिक्त अन्य कई मत और सम्प्रदाय भी थे। वैष्णव, शैव और शाक्त धर्मों की छाया में, मंदिरों, देवालयों और मठों में धर्म के नाम पर अनाचार व दुराचार होता था। धर्म और सदाचार परायण जीवन के स्थान पर मंत्र–तंत्र, व्रत, अनुष्ठान, अलौकिक शक्ति और सिद्धियों को अधिक महत्व दिया जाता था। बहुदेववाद प्रचलित था। अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियों की पूजा होती थी। जन–साधारण में मूर्ति–पूजा, भूत–प्रेत और वृक्ष–पूजा प्रचलित थी। कर्मकाण्ड का बाहुल्य था। व्रत, पूजा–पाठ, अनुष्ठान, यज्ञ, हवन आदि विभिन्न प्रकार के धार्मिक क्रिया–कलाप थे।

जन साधारण को सदियों की मानसिक दासता से मुक्त कराने, समाज को अनेक कुप्रथाओं के इन्द्रजाल से छुड़ाने के लिए और धर्म का विकृत रूप नष्ट करने के लिए रामानन्द, कबीर, चैतन्य, नानक, रैदास आदि संतों और भक्तों ने आजीवन प्रयास किया। इन संतों और सुधारकों के प्रचार का मुख्य आधार था सदाचारी जीवन और भगवान की अनन्य भक्ति। उनका उद्देश्य था कि जात–पात के भेदभाव मिस्या हैं और देवी–देवताओं के प्रति अन्धविश्वास, पूजा–पाठ, मनुष्य के मोक्ष के मार्ग में बाधक हैं। इसके प्रतिकूल सबके साथ समानता का व्यवहार और ईश्वर भक्ति की सच्चे साधना ही मनुष्य को मुक्ति दिला सकती है और समाज का उत्कर्ष कर सकती है। इससे धर्मग्रन्थ किसी वर्ग की सम्पत्ति न बनकर जनसाधारण की संपत्ति बन गये, धर्म और मोक्ष का द्वारा सब के लिए खोल दिया गया और धर्म ने प्रजातंत्रात्मक रूप धारण कर लिया। जाति–प्रथा के बन्धन और नियंत्रण ढीले होने लगे।

13वीं शताब्दी में भारत में तुर्की सत्ता की स्थापना के साथ ही देश में अनेक विदेशी ईरानी, तुर्क, अफगान, पठान तथा अरब व मध्य एशिया के देशों के सामन्त, सरदार, अमीर, व्यापारी, विद्वान, कवि, लेखक, सैनिक, पदाधिकारी आदि आ गये थे और वे मुस्लिम राज्यों की सेवाओं में थे। इनका अपना मुस्लिम समाज था। इनमें मुल्ला, मौलवी, सैयद भी थे। इनका उल्मा वर्ग था, जिसे क्षमाधिकारी कहा जाता था। यह मुस्लिम समाज संख्या में सीमित थे। इसके अतिरिक्त बहुसंख्यक मुसलमान वे थे, जो हिन्दू समाज से धर्म परिवर्तन कर आये थे, जिसे नव मुसलमान कहा जाता था।[2] मुस्लिम शासकों और सुल्तानों की दमन और अत्याचार की नीति से बचने लिए एवं जजिया व अन्य नियत करों से मुक्ति हेतु अनेकानेक निम्न वर्ग के हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म अपना लिया था। परन्तु इससे उनके दैनिक जीवन में, उनके विश्वास, धारणाओं, आचार–विचार और रीति–रिवाज में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वे प्रायः हिन्दुओं के समान ही थे। मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा सम्मानप्रद नहीं थी, उनकी स्वतंत्रता नियंत्रित थी।

लगभग तीन सदियों से भारत में मुस्लिम शासन बने रहने से भारतीय जनता और मुस्लिम शासन परस्पर एक दूसरे को समझने लगे थे। इस्लामी सभ्यता, संस्कृति और धर्म भी हिन्दू जनता को धीरे–धीरे प्रभावित करने लगा था। हिन्दुओं के हृदय में मुसलमानों के प्रति अब वह वैमनस्य, घृणा और हीनता की भावना नहीं रही थी, जो इस्लाम के अनुयायियों के प्रारम्भिक आक्रमणों के समय थी। हिन्दुओं ने अब मुसलमानों से निरन्तर संघर्ष और युद्ध करने की निरर्थकता को समझ लिया था। मुस्लिम शासक और अधिकारी भी भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। वे भी बहुत कुछ भारतीय बन चुके थे। मुस्लिम शासकों ने अपनी धर्मान्धता, संकीर्णता और हठधर्मिता की नीति त्यागकर प्रजा–हित की नीति अपनायी और कई प्रशासकीय सुधारों के कार्य किये। भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के साथ जहाँ राजनैतिक क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन होता है, वहीं उत्तर भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बहुत बड़ा बदलाव दिखाई देता है। भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना अर्थात इस्लाम के आगमन के बाद हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति एक दूसरे में पूर्ण रूप से विलीन नहीं हो सकी। लेकिन दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे से अवश्य प्रभावित हुई। जिसे इण्डों–इस्लामिक संस्कृति कहा गया।

आधुनिक विद्वानों के बीच यह विवाद का विषय है कि इस्लाम एवं हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का एक दूसरे पर कितना प्रभाव पड़ा। डॉ0 तारा चन्द के अनुसार इस्लाम के प्रभाव के कारण उत्तर भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक

जीवन बदलाव आये[3] जबकि जदुनाथ सरकार का मत है कि भारतीय सभ्यता ने इस्लामी सभ्यता को पूर्ण रूप से प्रभावित नहीं किया। भारतीय अपनी ग्राह्य शक्ति के प्रसिद्ध होने के कारण यह सम्भव नही था कि इस्लामी सभ्यता सम्बन्धी सभी तत्वों को ग्रहण कर सके लेकिन एक साथ पड़ोसी कस्बों एवं ग्रामों में सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हुए जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दू–मुस्लिम समाज की एकता का आधार स्थापित हुई।[4]

भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव

इस्लाम का आगमन भारत में एक व्यापारिक क्रम से प्रारम्भ होता है। भारतीय समुद्रों में पहला मुस्लिम बेड़ा 636 ई0 में 'उमर की खिलाफत के समय प्रारम्भ हुआ था और 7वीं सदी के अंत तक लगभग मुस्लिम मालावार तट पर बस गये।[5] प्रख्यात विद्वान तारा चन्द ने लिखा है कि न केवल हिन्दू धर्म कला, साहित्य तथा विज्ञान से इस्लामी तत्वों को ग्रहण किया, बल्कि हिन्दू सभ्यता की आत्मा तथा हिन्दू मस्तिष्क पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गयी। इस्लाम ने भारतीय सभ्यता के क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर दी। परिणाम स्वरूप हिन्दू सभ्यता के प्रमुख स्तम्भ ध्वस्त होने लगे।[6]

इस्लाम अपने उदावादी एवं प्रजातंत्रात्मक सामाजिक संगठन के लिए सम्पूर्ण विश्व में विख्यात था। मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद हिन्दू समाज के उपेक्षित तथा पद दलित वर्ग के अधिकांश लोग सामाजिक समानता के अधिकार को प्राप्त करने के लिए इस्लाम को स्वीकार करने लगे।

मुस्लिम का भारतीय संस्कृति के विकास पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा, हिन्दू धर्म को जबरजस्त आघात पहुँचा, पुराहित एवं पण्डितों को मिलने वाली राजकीय संरक्षण समाप्त हो गये। बाहर से देखने पर राजनैतिक विजय का अर्थ सांस्कृतिक मृत्यू थी।[7] इसी प्रकार का प्रभाव भारतीय आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य, वस्तुकला, संगीत एवं आमोद–प्रमोद के साधनों पर पड़ा।

मुसलमानों ने तथाकथित अरब एवं ईरानी स्थापत्य कला की शैलियों के कुछ विशेष तत्वों को उधार लिया, किन्तु उन्होंने भारत में एक नई शैली विकसित की जो हिन्दू शैली की परम्पराओं को जारी रखे हुई थी अर्थात् एक नई हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला का विकास हुआ।[8] स्थिति सुधारने के लिए इस्लामी समाज एवं प्रशासन महत्वपूर्ण योगदान किया।

इस्लामी समाज पर हिन्दू सभ्यता का प्रभाव

जिस प्रकार भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा उसी प्रकार मुस्लिम समाज पर हिन्दू सभ्यता का प्रभाव उल्लेखनीय है। मुसलमानों ने सैनिक

एवं राजस्व पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया, किन्तु वैदिक एवं सांस्कृतिक साम्राज्य आजीवित रहा। इस्लामी सामाजिक व्यवस्था की विशेषता समानता रही किन्तु भारतीय परिवेश में उसकी विशेषता प्रभावित हुई। हिन्दू समाज की भांति उसमें भी ऊँच–नीच की भावनाओं का समावेश हुआ। इस्लामी समाज पर भारतीय भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। मुस्लिम अपनी तुर्की एवं फारसी भाषा त्याग देता है और हिन्दुओं की बोली अपना लेता है।[9] मुस्लिम अपनी स्थापत्य एवं चित्रकला के समान अपनी जरूरतों के अनुसार बोली में संशोधन कर लेता है और इस प्रकार एक नया साहित्यिक माध्यम उर्दू विकास होता है। अब उर्दू हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों बाखूबी प्रयोग करते हैं।

मुसलमानों पर जाति प्रथा, हिन्दू घरेलू रिवाजों का प्रभाव देखा जा सकता था। जब कोई व्यक्ति मस्जिद में प्रवेश करता है, तो उसे पहले दाहिना पैर रखता पड़ता था। इसी प्रकार उसे स्वयं की अशुद्धि से बचाये रखने के लिए विशेष सावधानी बरतनी पड़ती थी, औपचारिक शुद्धि के बिना कुरान का स्पर्श पाप माना जाता था।[10] मुसलमान शासकों ने अनेक हिन्दू राजकुमारियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। इन राजकुमारियों ने अपने आचार–व्यवहार, रीति–रीवाज तथा धार्मिक–विचार से इस्लाम प्रभावित राजमहल के वातावरण को परिवर्तित किया। हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृति एक दूसरे के साहित्य, संगीत, स्थापत्य कला, चित्रकला, पोषाक, भोजन, विवाह समारोह, मेले इत्यादि को आत्मसात किये जिसको इण्डो इस्लामिक संस्कृति कहा गया।

भक्ति आन्दोलन

भारतीय परिवेश में भक्ति आन्दोलन रूढ़ीवादी, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों के विरूद्ध एवं प्रतिक्रिया एवं भावों के उद्‌गार के रूप में सामने आया। भारतीय समाज प्रारम्भिक चरण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कर्म एवं गुण के आधार पर विभाजित था, लेकिन बाद मे इसमें घोर पतन हुआ और ब्राह्मण समाज का सर्वोपरि बन गया। अलबरूनी के अनुसार समाज पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। वेद अध्ययन धार्मिक पूजा, अराधना, यज्ञ, शूद्रो के लिये वर्जित था। यदि कोई शूद्र उक्त कर्म करने का प्रयास किया तो समकालीन शासकों ने ब्राह्मणों के प्रभाव में आकर उनकी जिह्‌वा कटवा दिया।[11]

भक्ति आन्दोलन का द्वितीय चरण इस्लाम एवं हिन्दू धर्म के परिवारिक सम्बन्धों के फलस्वरू नवीन विचारधाराओं के रूप में सामने आया। भक्ति आन्दोलन को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख भक्ति संतों में सर्वप्रथम रामानन्द को अग्रणी माना जा सकता है। रामानन्द की शिक्षाओं ने धार्मिक चिंतन की दो विचारधाराओं को जन्म दिया। एक रूढ़ीवादी, दूसरी प्रगतिवादी। दूसरी विचार

धारा (प्रगतिवादी) ने ज्यादा स्वतंत्र मार्ग अपनाया जिसे हिन्दू एवं मुसलमान दोनों पंथों ने स्वीकार किया। रामानन्द धर्म के बाह्य आडम्बर एवं संस्कार के विरोधी थे।[12]

रामानन्द के शिष्य परम्परा एक वर्ग वर्णाश्रम धर्म के उन्मूलन की शिक्षा देता तथा वेदों एवं अन्य पवित्र ग्रन्थों को संदेह की दृष्टि से देखता। इस सम्प्रदाय के अनुयासी नास्तिक कहलाये, जिसमें कबीर प्रमुख थे। कबीर का सम्प्रदाय (पन्थ) इस्लाम धर्म को समझाता था और इस्लाम के कुछ सिद्धान्तों को अपने में मिला लेने के कारण कबीर का सिद्धान्त बहुत व्यापक बन गया। कबीर एक ऐसे भविष्य का सपना देखते हैं, निष्ठाहीनता, असत्य, बुराईयां, असमानता नही हो। वे बिना हिचक के रूढ़ि एवं सत्ता के आडम्बरों को नकारते है, क्योंकि उनकी आत्मा धर्मो के झगड़ो एवं औपचारिक के रिक्त आवरण के दयनीय स्थिति से त्रस्त थी। कबीर शक्तिशाली चेतनावनी देने वाले निर्भीक मार्गदर्शक, भारत के हिन्दुओं एवं मुसलमानों के एकता के महान पुरोधा और मानवता के धर्मदूत थे, जिन्होंने यह शिक्षा दी कि ईश्वर ने स्वयं को मानव जाति में पूर्ण रूप से प्रकट किया।[13]

कबीर आध्यात्मिक गुरू के तलाश में इधर–उधर भटकते रहे और इलाहाबाद के पास शाबानुल मिल्लत के पुत्र सुहरावर्दी सूफी सिलसित के संत शेख तकी से भेंट कर उनसे शिक्षा ली।[14] कुछ लोगों ने उन्हें कबीर का गुरू स्वीकार किया है, लेकिन वास्तव में कबीर उन्हें अपना गुरू स्वीकार नही किये। उनके गुरू रामानन्द थे और कबीर गुरू रामानन्द के विचारों से पूरी तरह प्रभावित थे।

कबीर का युग परस्पर दो धर्मो, सांस्कृतियों एवं सभ्यताओं का संघर्ष था। कबीर हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच समानता का प्रतिपादन करके पारस्परिक विरोध को समाप्त कर एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। कबीर की शिक्षा न हिन्दुओं को प्राथमिकता देती थी और न ही मुसलमानों को। दोनों धर्मों की अच्छी बातों की सराहना करते थे।[15] कबीर हिन्दू धर्म एवं इस्लाम के उन तत्वों को नकार दिया जो भगवान के विरूद्ध एवं व्यक्ति के कल्याण के उपयोगी नही था। उन्होंने संस्कृत एवं फारसी शब्दावलियों रेख्ता तथा हिन्दी भाषा दोनों बोलियों का प्रयोग किया। उन्होंने दोनों धर्मों के बीच बटवारें को जान–बूझ कर त्यागा और मध्य के रास्ते की शिक्षा दी।

हिन्दू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाय।
कहै कबीर सो जीवता, दोउ के संग जाय।

अर्थात हिन्दू मन्दिर में शरण लेता है और मुसलमान मस्जिद की, किन्तु

कबीर ऐसे जगह जाते है, जहां दोनों को जाना जाता है। कबीर बारम्बार कहते है, कि हिन्दू एवं मुसलमान एक है वे एक ही ईश्वर की उपासना करते है, वे एक पिता के संतान है और वे एक खून से बने हैं।

कबीर हिन्दू धर्म एवं इस्लाम को निकट लाने वाले पहले व्यक्ति थे। कबीर की आवाज को पूरे भारत में सुना गया और उनकी प्रतिध्वनि सैकड़ों स्थानों में सुनाई दी। उनके असंख्य हिन्दू–मुस्लिम शिष्य थे और आज उनके पंथ में करोड़ों लोग है। वास्तव में कबीर 'इण्डो इस्लामिक' संस्कृति के प्रतीक है।

गुरूनानक

गुरूनानक का मिशन हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करना है, उन्होंने अनुभव किया कि समाज के घावों को भरने के लिए धर्म के झगड़ो को खत्म किया जाय। गुरूनानक हिन्दू होते हुये भी मुस्लिम सूफी संतों की संगति में प्रायः रहा करते थे। सम–सामयिक सूफी सन्तों से उनके भेंट के वृतान्त ''जन्म साखी'' में सुरक्षित है, जिसमें मुख्यतः शाह बू अली, कलन्दर पानी पती शैख इब्राहिम और मियां मीठा आदि थे।[16] नानक की धर्म की अवधारणा अत्यन्त व्यवहारिक एवं कठोर रूप से नैतिक थी।

गुरू नानक का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू, मुस्लिम सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करना था। उनका मानना था कि हिन्दू तथा इस्लाम धर्म एकेश्वर तक पहुंचने के दो मार्ग हैं। वे अपने को ईश्वर का देवदूत अथवा पैगम्बर समझते थे।[17] उन्होंने अपना जीवन हिन्दू–मुस्लिम के एकता एवं एकेश्वर के सिद्धान्त के प्रतिपादन में व्यतीत किया। बिना जाति एवं सम्प्रदायिक के भेदभाव के हिन्दू एवं मुसलमानों का अपना शिष्य बनाये और उन्हें एक साथ भोजन करने पर जोर दिया। गुरूनानक ने सम्प्रदायिक भेदभाव को समाप्त कर हिन्दू, मुसलमानों के बीच समन्वय का सिद्धान्त अपनाने का प्रयास किया। उनका मूल उद्देश्य दोनों धर्मो, समानताओं एवं संस्कृतियों के संघर्ष को समाप्त कर देश में शान्ति की स्थापना करना था।

महाप्रभु चैतन्य

महाप्रभु चैतन्य जिस समय बंगाल में अपने उपदेश के साथ रंगमंच पर आते है, उस समय बंगाल मुस्लिम शासन के आधिपत्य में आ गया था। कबीर एवं नानक की भांति चैतन्य का मुख्य उद्देश्य सामाजिक असमानता को दूर कर पद–दलित वर्ग को ऊँचा उठाना था, साथ ही वे शूद्रों को समानता का अधिकार दिला कर उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने से रोकना चाहते थे। इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को दूर करके ब्राह्मणों के प्रभूत्व को समाप्त

करना चाहते थे। चैतन्य हिन्दू, मुसलमानों में सम्प्रदायिकता तथा ऊँच–नीच की भावनाओं को समाप्त कर समाज में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। चैतन्य ने ब्राह्मणों के सम्पूर्ण कर्मकाण्ड पद्धति की निन्दा की, उनके अनुसार पूजा, प्रेम और भक्ति, गीत एवं नृत्य में निहित है।[18]

रैदास

रैदास चमड़े का कार्य करते थे और बहुत ही नीच जाति के थे। रैदास कबीर के समान हिन्दू धर्म एवं इस्लाम की एकता को प्रकट करने के लिए रेख्ता का यहाँ तक कि फारसी भाषा का यहां तक की सूफी शब्दों का उपयोग करते है। रैदास सभी बाह्य कर्मकाण्डों जैसे–तीर्थ, व्रत, सिर मुड़ाना, मन्दिरों में गाना–नाचना, मूर्तियों को पत्ते चढ़ाना, त्याग कर स्वयं को ईश्वर में खोकर एक ईश्वर की भक्ति अपनाना जरूरी था।[19] रैदास कहते है कि मेरी जाति छोटी है, कर्म भी छोटा है और व्यवसाय भी छोटा है। लेकिन हे ईश्वर मुझ छोटे को भी तुमने ऊँचा बना दिया।

उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रमुख विद्वानों/कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानो ंको आपस में जोड़ने का प्रास किये और साथ समाज में फैली कुरीतियों, जाति प्रथा, ऊँच–नीच, भेदभाव को कम या समाप्त करने का प्रयास किया। भारत में तुर्की सत्ता की स्थापना के साथ ही जहां प्रशासन एवं राजनैतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक परिवर्तन भी हुई। अर्थात हिन्दू संस्कृति मुस्लिम समाज को प्रभावित की और इस्लामी संस्कृति ने हिन्दू समाज को प्रभावित की, जिसे भारतीय इतिहास में ''इण्डो इस्लामिक'' संस्कृति की संज्ञा दी गयी।

सन्दर्भ

1. *प्रोफेसर राधेश्याम–मध्यकालीन प्रशासन समाज एवं संस्कृति, इलाहाबाद, 1999, पृ0सं0–171*
2. *वही, पृ0सं0–172*
3. *डॉ0 तारा चन्द–भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव–पृ0सं0–126*
4. *डॉ यूसूफ हुसैन–मध्य युगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक)–पृ0सं0–114*
5. *डॉ0 तारा चन्द–भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव–पृ0सं0–43*
6. *उपरोक्त – पृ0सं0 113*
7. *उपरोक्त – पृ0सं0 130*
8. *उपरोक्त – पृ0सं0 133*
9. *उपरोक्त – पृ0सं0 133*
10. *के0एम0 अशरफ–हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन एवं उनकी परिस्थिति*

पृ0सं0–283–84

11. एडवर्ड सी0 सखाऊ (हिन्दी अनुवाद) भारत अलबिरूनी – पृ0सं0 41

12. डॉ0 यूसूफ हुसैन– मध्य युगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक)–पृ0सं0–13

13. डॉ0 तारा चन्द–भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव–पृ0सं0–138

14. डॉ0 यूसूफ हुसैन– मध्य युगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक)–पृ0सं0–18

15. उपरोक्त – पृ0सं0 18

16. उपरोक्त – पृ0सं0 26

17. डॉ0 तारा चन्द–भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव–पृ0सं0–160

18. उपरोक्त – पृ0सं0 203

19. उपरोक्त – पृ0सं0 172

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी, 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-55-61

जनजातीय समाजों में महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका

*डॉ० ललिता पाण्डेय **
*डॉ० अभिषेक त्रिपाठी,***

नर और नारी प्रत्येक समाज और परिवार के आवश्यक अंग होते हैं। सृष्टि को आगे बढ़ाने में नर एवं नारी दोनों का बहुमूल्य योगदान रहा है। भारतीय समाज में नारी को पुत्री, बहन, पत्नी, माता, सास, दादी, नानी के रूप में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में ये सामाजिक पद प्राप्त होते हैं। किन्तु सभी कालों में नारी की स्थिति एक समान नहीं रही है। विभिन्न कालों में उसकी स्थिति में परिवर्तन आया है। पूर्व वैदिक काल में समाज में स्त्रियों को काफी सम्मान दिया गया किन्तु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा पहले से खराब हो गई। पुत्री को दुखों को स्रोत तथा पुत्र को परिवार का रक्षक कहा जाने लगा। बौद्ध एवं जैन काल में भी स्त्रियों की दशा संतोषजनक नहीं थी। मध्ययुगीन समाज में बाह्य आक्रमणकारियों के कारण नारियों के स्थिति अत्यन्त खराब हो गई। समाज में बाल विवाह, पर्दा प्रथा का प्रचलन बढ़ गया। ब्रिटिश शासनकाल में नारियों की दशा सुधारने के कई प्रयत्न किये गये लेकिन परिणाम संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में नारियों की दशा बदलने के लिए सरकार द्वारा कई सकारात्मक कदम उठाए गए। हर क्षेत्र में महिलाओं को पुरुष के समान अधिकार दिये गये। फलस्वरूप महिलाएँ मात्र गृहिणी ही नहीं रहीं बल्कि विभिन्न प्रकार के व्यवसाय, सूचना तकनीकी में, यहाँ तक कि राजनीतिक क्षेत्र में मुखिया से लेकर मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के पद पर आसीन रही हैं। लेकिन ये परिवर्तन केवल शहरी इलाकों में हुआ है। परम्परागत ग्रामीण समाज में अभी भी नारियों को कुपोषण, कुप्रथा, शोषण–उत्पीड़न तथा अत्याचार का शिकार होना पड़ रहा है।

जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति अलग–अलग है। जनजातीय समाज में जीवन और संस्कृति में भिन्नता है। जनजातीय समाज की परिवारिक व्यवस्था में महिलाओं का योगदान अति महत्वपूर्ण है। महिलाएं पारिवारिक आमदनी में बराबर का सहयोग करती रही है। लेकिन जनजातीय समाज की अपनी परम्परा है, और उसी परम्परा के अनुरूप महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका

**सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, गांधी शान्ति निकेतन महाविधालय, प्रयागराज (उ०प्र०)*
***सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती विश्वविधालय, प्रयागराज (उ०प्र०)*

का संबंध भी है। यद्यपि जनजातीय पुरुष अब भी पारिवारिक जीवनवृत्त के प्रमुख विज्ञेता है, फिर भी वर्तमान समय में जनजातीय महिलायें स्थान ग्रहण कर रही हैं। जनजातीय महिलायें अधिक सारपूर्ण तरीके से कार्य शक्ति के रूप में योगदान गैर जनजातीय जगत की अपेक्षा अधिक देती हैं। दैनिक जीवन में गैर जनजातीय समाज की तुलना में जनजातीय समाज में नारी स्वतंत्रता की झलक देखने को मिलती है।

परिवार सामाजिक संगठन की इकाई है। जनजातीय समाज में पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक दोनों प्रकार के परिवार पाए जाते हैं। अधिकांश जनजातीय समाज की पारिवारिक संरचना पितृसत्तात्मक है जिसके अन्तर्गत पिता का स्थान परिवार में सर्वोपरि होता है। जनजातीय समाज में लड़कियाँ पिता की परिसंपत्ति समझी जाती है। जब तक लड़की अविवाहित है, पिता की संपत्ति समझी जाती है। कन्या जब तक अविवाहित है, तबतक पैतृक संपत्ति का उपभोग कर सकती है, किन्तु पैतृक सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती है। यद्यपि उन्हें पोषण एवं वैवाहिक खर्च पिता से या पिता के उत्तराधिकारी से प्राप्त करने का अधिकार है। जनजातीय समाज में क्रय विवाह का प्रचलन है तथा समगोत्रीय विवाह निषेध है। कन्या को पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिए लड़के वालों को वधू मूल्य देना पड़ता है। वस्तुतः वधू मूल्य दिखावे के लिए होता है, किन्तु इन दिनों वधू मूल्य के रूप में कपड़े तथा नगद राशि माँगा जाने लगा है। वधू मूल्य की राशि अधिक मांगे जाने के कारण और न दिये जाने से 'हो' जनजाति में चिरकुवाँरी की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। विवाह बहुधा वर–वधू की पसंद पर ही तय किये जाते हैं। जनजातीय समाज में पुत्रियों को भी पुत्रों के समान घूमने–फिरने की स्वतंत्रता है। विवाह में कन्या को स्वतंत्र चुनाव करने की भी स्वतंत्रता होती है। पुत्र–पुत्रियों के अधिकार लगभग समान होते हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में न्यायालय के निर्णय के अनुसार पुत्र–पुत्री को बराबर मानकर पैतृक संपत्ति में बराबर का अधिकार दिया गया है।

जनजातीय समाज में एकांकी और संयुक्त दोनों तरह के परिवार होते हैं। परिवार सामान्यतः बड़ा होता है। एक स्त्री को परिवार में नातेदारी से संबंधित परिहास एवं परिहार दोनों प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। जनजातीय समाज में बुजुर्ग या वृद्ध महिला को दादी, नानी या सास के रूप में सम्मान की दृष्टि जाता है। परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों शादी, ब्याह आदि से संबंधित मामलों में इनकी सलाह ली जाती है। किन्तु कभी–कभी महिलाओं में कुछ को डाइन होने के अंधविश्वास में सामाजिक कोप का शिकार भी होना पड़ता है। जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति अन्य समाजों की

महिलाओं की तुलना में निश्चित रूप से बेहतर है। उन्हें अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने के मामले में सामान्य महिलाओं के मुकाबले अधिक स्वतंत्र हैसियत प्राप्त है तथा उनका रूतबा कहीं अधिक सम्मानजनक और सशक्त है।

जनजातीय अर्थव्यवस्था आधुनिक समाज की अर्थव्यवस्था से भिन्न है। जनजातीय समाज में आर्थिक क्रियाएँ मुख्य रूप से जीवन निर्वाह के लिए की जाती हैं। इसलिए उन्हें प्रकृति से संघर्षरत रहना पड़ता है। जनजातीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से भौगोलिक पर्यावरण पर निर्भर करती है। समाज में अधिकांशतः पारिवारिक एवं सामूहिक आधार पर ही उत्पादन के लिए प्रयत्न किये जाते है। जनजातीय समाज में महिलायें आर्थिक गतिविधियों के अन्तर्गत पुरुषों की मात्र सहयोगी होती है। जनजातीय महिलाएँ जो कुछ भी अधिकार पाती है, वह उनके कठिन परिश्रम तथा सहनशीलता का पुरस्कार होता है। आर्थिक क्रियाकलापों में पुरुषों के लगभग समकक्ष संलग्न रहने वाली जनजातीय महिलाएं अपनी ही मेहनत से अर्जित आर्थिक उपलब्धियों का उपभोग पुरुषों के समतुल्य नहीं कर पातीं। यद्यपि जनजातीय समाज में आर्थिक प्रतिबंध संबंधी कोई विशिष्ट प्रथा नहीं है फिर भी स्त्री या पुरुष स्वच्छन्दता पूर्वक अपने निर्धारित कार्य की अदला–बदली नहीं कर सकते।

जनजातीय महिलाएं काफी मेहनती और कठिन श्रम करने वाली होती है। इन्हें गृहकार्यों के आलावा खेतों, जंगलों, निर्माण कार्यों, ईंटा भट्ठों, खदानों तथा कल–कारखानों में कार्य करते हुए देखा जा सकता है। जनजातीय लड़कियाँ पढ़ाई के साथ गृहकार्य में भी मदद करती हैं। चरवाही ओर कृषि कार्य भी करती हैं। कुछ लड़कियाँ लोगों के घरों में दाई का कार्य करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं। आज बड़े पैमाने पर जनजातीय लड़कियाँ बड़े नगरों में दाई का काम कर रही है। जनजातीय क्षेत्रों में मुख्यतः महिलाएं ही घर का सारा कम करती हैं। इसके अतिरिक्त बच्च्चों की देखरेख, पालन–पोषण का कार्य करती हैं। गांव में खेती के मौसम में निकवन, रोपनी और कटनी का काम करती हैं। जनजातीय महिलाएं स्थानीय हाट–बाजारों में जाकर अपने द्वारा उत्पादित सामग्रियों की बिक्री करती है। उन सामग्रियों में चावल, उड़द, मूंग, मूंगफली, महुआ, आलू स्वयं रस्सी, चटाई, टोकरी, झाड़ू, पत्तल, दोना, दातून एवं हंडिया बेचकर भी आय प्राप्त करती हैं।

जनजातीय गाँवों में रोजगार के सीमित साधन उपलब्ध होने के कारण जनजातीय महिलाओं के विभिन्न राज्यों जहाँ रोजगार उपलब्ध हो, जाना पड़ता है। जहाँ वे अशिक्षित होने के कारण श्रमिक, दाई, रेजा इत्यादि के रूप में कार्य करती हैं। उनमें से कुछ 6 महीने के बाद कृषि के मौसम में पुनः गांव लौटकर

आती है तथा कुछ अन्य राज्यों में ही अस्थायी निवास बनाकर रहती है। जनजातीय क्षेत्र खनिज सम्पदा से भरा पड़ा है तथा यहाँ बड़े–बड़े औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना भी की गई है। किन्तु इन औद्योगिक केन्द्रों में जनजातीय महिलाओं को बहुत ही सीमित नियोजन के अवसर प्रदान किये गये हैं। आज के परिवेश में आदिवासी महिलाएं परम्परागत व्यवसायों को छोड़कर गैर परम्परागत व्यवसाय जैसे–नौकरी भी करने लगी हैं।

इस प्रकार जनजातीय समाज में स्त्री की आर्थिक स्थिति पुरुषों से किसी प्रकार नीची नहीं होती है। अर्थोपार्जन की क्रियाओं, खेती, पशुपालन आदि सारे काम स्त्री और पुरुष के परस्पर सहयोग से होता है। एक जनजातीय स्त्री के जीवन में कभी ऐसा समय नहीं आता कि उसको मजबूर होकर, प्रेम तथा सहयोग न पाते हुए सब प्रकार के अत्याचार सहन करके पुरुष की दासी के समान जीवन व्यतीत करना पड़े। इस दृष्टि से वह अपनी बहुत सी सभ्य बहनों से बहुत अच्छी स्थिति में है। गैर जनजातीय समाज में कार्य करने वाले पुरुष और महिला का औसत 5:1 है जबकि जनजातियों के बीच यह औसत 3:1 है।

अलौकिक शक्ति से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं को ही हम 'धर्म' कहते हैं। धर्म का आधार श्रद्धा, भक्ति, भय, पवित्रता है, जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या अराधना द्वारा की जाती है। जनजातियों का धर्म अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या अराधना द्वारा की जाती है। जनजातियों का धर्म अभिव्यक्ति, प्रकृतिवाद, टोटमवाद इत्यादि पर आधारित है। उनके घर, गांव, बहुदेववाद, प्रकृतिवाद, टोटमवाद इत्यादि पर आधारित है। उनके घर, गांव, मैदान, जंगल सभी धार्मिक केन्द्रों से भरे पड़े हैं। जनजातीय समाजों में धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन में महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्न है। जनजातीय समाज में पाहन के रूप में पुरुष ही मुख्य रूप से धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करते हैं। परिवार के प्रमुख पुरुष का यह उत्तरदायित्व है कि वह परिवार के स्तर पर देवी–देवताओं की पूजा करे। सरना स्थल में महिलाओं का प्रवेश निषेध होता है। यहाँ तक की महिलाएं घर के कुल देवताओं की भी पूजा नहीं कर सकतीं। धार्मिक मान्यताओं के विभिन्न पर्व–त्योहारों के अवसर पर महिलाएं केवल मुख्य रूप से नृत्य संगीत और आनंदोत्सव में भाग ले सकती हैं। संथाल जनजाति की महिलाओं को जोहर स्थान (देव स्थान) जाने पर पाबंदी है। उराँव जनजाति की महिलाएं चांडी और खद्दी पर्व में न तो भाग लेती हैं और न प्रसाद ग्रहण करती हैं। जनजाति महिलाएं दाह संस्कार के लिए शमशमान स्थल पर नहीं जाती है। जनजाति में ओझा, तथा डायन कर्म में विश्वास भी धर्म के अन्तर्गत समाहित है। जनजातियों की अशिक्षा और अंधविश्वास ने इसे और भी बढ़ावा दिया है। यही

कारण है कि डायन कर्म करने वाली महिलाओं की हत्यायें झारखण्ड में अधिक होती है।

जनजातियों में परम्परागत शक्ति संरचना पाई जाती है। यह जनजातीय पंचायत परम्परा, प्रथा तथा धार्मिक विश्वास पर आधारित है। पंचायती व्यवस्था में टोला स्तर पर 'टोला पंचायत' ग्राम स्तर पर 'हातु पंचायत' इसके बाद कई ग्रामों के लिए 'पड़हा पंचायत' होती है। परम्परागत जनजातीय व्यवस्था के अन्तर्गम महिलाएं न तो पंचायत की सदस्यता होती है न ही अपनी जाति के नेता के चुनाव में हिस्सा लेती हैं। महिलाएं पंचायत की बैठक में भी भाग नहीं लेती है किन्तु जनजातीय महिलाओं की उपस्थिति पंचायत के समक्ष अति आवश्यक समझे जाने पर उन्हें अपना तर्क देने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार परम्परागत शक्ति संरचना में महिलाओं का कोई स्थान नहीं है क्योंकि सभी प्रमुख पदाधिकारी पुरुष वर्ग के होते हैं।

किन्तु वर्तमान में जनजातीय महिलाओं में राजनीति के प्रति जागरूकता आयी है। वे अपने मताधिकार का प्रयोग करती हैं। यह कहा जा सकता है कि जनजातीय शक्ति संरचना अपने परम्परागत स्वरूप से हटकर नवीनता को आत्मसात कर रही है। इस नवीन शासन व्यवस्था के अन्तर्गत महिलाओं में भी राजनैतिक चेतना का उदय हुआ है, जिससे जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है और जनजातीय महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय हैं।

जनजातीय समाज की संस्कृति की प्रमुख विशेषता है, युवागृह, अखड़ा स्थल, सरना स्थल, ससानदीरी, कला, संगीत, नृत्य, भाषा, साहित्य इत्यादि। प्रत्येक जनजातीय गांव में जनजातीय में युवक–युवतियों के लिए अलग–अलग युवागृह होते हैं। युवतियों के युवागृह का संचालन कोई वरीय महिला करती है और युवकों का युवागृह की संचालन वरीय पुरुष। इनके नियंत्रण में रहकर युवक तथा युवतियाँ अपने संस्कृति को ग्रहण करते हैं। युवागृह में इन्हें विवाह, पारिवारिक जीवन, नृत्य, संगीत, अस्त्र–शस्त्र चालन तथा ग्राम की सुरक्षा से संबंधित जानकारी दी जाती है। विवाह के बाद महिलाओं द्वारा गीत, संगीत, नृत्य कथा, नाटक, हँसी–मजाक, गाली तथा ज्ञान मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते रहते हैं। अखड़ा स्थल में पर्व–त्योहारों, शादी–विवाह के अवसर पर स्त्री और पुरुष सामूहिक रूप से नाचते–गाते हैं। जनजातियों में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में कई तरह के अनुष्ठान–जैसे गर्भ धारण, छठी, बरही, सताइसा, भातखई, मुड़ना, विवाह, संतानोत्पत्ति, मृत्यु आदि संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। इन अनुष्ठानों में महिलाएं प्रमुख भूमिका निभाती

हैं। जनजातीय कला, संस्कृति, कारीगरी, चटाइ, झाड़ू, टोकरी, रस्सी, घर की लिपाई–पुताई, बाल की सजावट, शरीर के अंगों की सजावट, दीवारों पर फूल, पौधा, पक्षी, सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि चित्र सुन्दर ढंग से बनाना इत्यादि के ही माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते रहते हैं।

ईसाई मिशनरियों के आगमन से पहले 'युवागृह' में जनजातीय युवतियाँ अपनी संस्कृति, रहन–सहन, आचार–व्यवहार संबंधी शिक्षा पाती थीं। उन्हें अक्षर ज्ञान नहीं था। वे आधुनिक शिक्षा से पूर्णतः अनभिज्ञ थीं। उस समय स्कूल ना के बराबर थे, शिक्षा उच्च एवं सम्पन्न वर्ग के लोगों तक सीमित थी। जब ईसाई मिशनरी आए तब उन्होंने जनजातियों के बीच शिक्षा का प्रचार–प्रसार आरम्भ किया। सुदूर गाँवों में उन्होंने लड़कियों के लिए कई स्कूल खोले। उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक किया। उन्हें शिक्षा का महत्व बताया। धीरे–धीरे जनजातीय महिलाओं के बीच शिक्षा का प्रचार–प्रसार आरम्भ हो गया। शिक्षित महिलाओं के बीच शिक्षा का प्रचार–प्रसार आरम्भ हो गया। शिक्षित महिलाओं की शिक्षिका, परिचारिका ईसाई जनजाति की महिलाएँ लगभग 99 प्रतिशत साक्षर हैं। किन्तु गैर आदिवासी महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं हैं। स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा भी जनजातियों को साक्षर बनाने के लिए कई स्कूल खोले हुए। प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान चलाया जा रहा है, उन्हें आरक्षण दिया जा रहा है। जनजातीय समाज में कुछ महिलायें सरकार द्वारा दिये जा रहे सुविधाओं का लाभ उठाकर आगे बढ़ रही हैं। किन्तु सरकारी सुविधा का लाभ जनजातीय ग्रामीण महिलाओं तक नहीं पहुँच पा रहा है। ग्रामीण महिलाएँ शिक्षा के प्रति अभी भी उतनी जागरूक नहीं हैं। वर्तमान समय में केवल सुविधा और आरक्षण देने और स्कूल खोलने से जनजातीय महिलाओं को साक्षर नहीं बनाया जा सकता। आवश्यकता है उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक करने की।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पितृसत्तात्मक जनजातीय समाज में भी महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। महिलाएँ सफल गृहणी के साथ–साथ पारिवारिक उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक संपादन करती है। वह एक कन्या के रूप में, बहन के रूप में, पत्नी के रूप में, माता के रूप में, दादी के रूप में अपनी भूमिका को निभाते हुए सामाजिक विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। आर्थिक क्षेत्र में जनजातीय महिलाएं पुरुषों की सहयोगी होती है। कृषि, ईंटा भट्ठा, मजदूरी, कारीगरी, दस्तकारी इत्यादि कार्यों के द्वारा वे अपने परिवार की

आय को बढ़ाने में बराबर की भागीदारी निभाती है। इसे बावजूद उन्हें संपत्ति में उत्तराधिकारी नहीं माना जाता। वस्तुतः उन्हें सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करने का अधिकार है। जनजातीय राजनीतिक व्यवस्था में भी महिलाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है। लेकिन वर्तमान में लोकतांत्रिक प्रणाली के अन्तर्गत जनजातीयशक्ति संरचना अपने परंपरागत स्वरूप के स्थान पर नवीनता को आत्मसात कर रही है। जिससे महिलाओं की भूमिका सक्रिय है। इस प्रकार जनजातीय महिलाओं के कारण ही जनजातीय समाज में धर्म और संस्कृति की निरंतरता कायम है। यह कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज में नारी स्वतंत्रता सामान्य समाजों से कहीं अधिक है। किन्तु आज आवश्यकता है। जनजातीय महिलाओं को आधुनिक विकास की प्रमुख धारा से जोड़ने की। सामाजिक उत्थान की सीढ़ियों पर चढ़ती जनजातीय महिलाओं को मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और सहयोग की आवश्यकता है। सरकार, समुदाय और स्वयंसेवी संस्थाएँ आपसी तालमेल से जनजातीय महिलाओं के विकास के लिए आगे आये तो जनजातीय महिलाएँ न केवल भारतीय समाज की अभिन्न अंग बन सकेंगी बल्कि राज्य और देश की प्रगति में सक्रिय और उपयोगी भूमिका भी निभा पायेंगीं।

सन्दर्भ

1. *भौमिक, पी. के.: सम ऐसपेकटस ऑफ इंडियन एंथ्रोपालजी, स्वर्णलेखा, कलकत्ता 1980*
2. *बोष एन. के.: ट्राइबल लाइफ इन इंडिया, नई दिल्ली 1971*
3. *हसनैन नदीमः ट्राइबल इंडिया टुडे,, हरमन पब्लिकेशन नई दिल्ली 1983*
4. *मेंडलबॉम डी. जी.: सोसायटी इन इंडिया, पॉपुलर पब्लिकेशन बॉम्बे 1972,*
5. *विधार्थी एल. पी.: क्ल्चरल काउन्टर ऑफ ट्राइबल बिहार,, पुंथी पुस्तकए कलकत्ता 1964*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXIII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-62 -68

बाल गंगाधर तिलक के विचारों में समाज सुधार एवं राष्ट्र निर्माण

*डॉ० कृष्णानन्द चतुर्वेदी**

40 वर्ष के सार्वजनिक जीवन में बाल गंगाधर तिलक ने अपनी शक्तियों का विविध प्रकार के कार्यों के लिए प्रयोग किया है। एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने पूना 'न्यू इंगलिश स्कूल', देक्क्न एजूकेशन सोसाइटी तथा फर्ग्युसन कालेज की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[1] मद्यनिषेध सम्बन्धी कार्यों के समर्थक थे। उन्होंने स्वदेशी का समर्थन किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से उन्होंने स्थायी प्रबन्ध, वित्तीय विकेन्द्रीकरण आदि अनेक आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव प्रस्तुत किये। अपने 'केसरी' तथा 'मराठा' नामक दो समाचार पत्रों तथा शिवाजी और गणपति महोत्सवों के द्वारा उन्होंने जनता में देशभक्ति की भावना जगायी। महाराष्ट्र के लोकजीवन में और 1915 ई0 के उपरान्त सम्पूर्ण भारत में उनका स्थान प्रमुख था। तिलक ऋग्वेद, वेदान्त, महाभारत, गीता तथा दार्शनिक कान्ट और जे0एच0 ग्रीन के दर्शन के प्रकाण्ड पंडित थे। तिलक के जीवन की सबसे बड़ी पूंजी उनका नैतिक चरित्र था। भयंकर और विनाशकारी विपदाओं के मुकाबले में दुर्दमनीय साहस तथा अटूट आशावाद उनके चरित्र का साथ था।

बाल गंगाधर तिलक में उद्देश्य की दृढ़ता, इच्छाशक्ति की अनमनीयता, चट्टान के सदृश दृढ़ संकल्प तथा कष्टों को सहन करने की आडम्बरहीन तत्परता जैसे अनेक गुण विद्यमान थे। एक उत्साही देशभक्त तथा निडर सिपाही की भांति उन्होंने एक शक्तिशाली राष्ट्रवाद की नींव स्थापित करने का सतत् प्रयास किया। एक अर्थ में वे सचमुच कठोर थे कि, अपने सिद्धान्तों के सन्दर्भ में वे किसी से समझौता करने को तैयार नहीं थे।

प्रारम्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में तिलक ने एक आन्दोलनकारी का काम किया। वे चाहते थे कि कांग्रेस की जड़ें जनता के जीवन में व्याप्त हो। 1905 ई0 में वे गरम दल के नेता के रूप में मान लिये गये। जब अन्य नेतागण ब्रिट्रेन की सहानुभूति तथा समर्थन की याचना कर रहे थे उस समय तिलक ने स्वावलम्बन तथा स्वसहायता का जमकर प्रचार किया। तिलक ने भारतीय धार्मिक आन्दोलन के राजनीतिक महत्व को स्वीकार करके दूरदर्शिता का परिचय दिया। उन्होंने जनता को जगाया तथा जन आकांक्षा के मूर्त रूप बने।

**असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय गाजीपुर (उ०प्र०)*

राजनीतिक बुद्धिवादी न बनकर उन्होंने व्यवहारकुशल राजमर्मज्ञता का मार्ग चुना। उनके व्यापक तथा अगाध पाण्डित्य ने दुनिया भर के स्वतंत्रता प्रेमियों को मार्ग दिखाया। स्वराज्य के लिए उनका मंत्र–'स्वराज्य हमार जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे' सदैव अमर हो गया है।

सामाजिक तथा राजनीतिक दार्शनिक के रूप में तिलक की उपलब्धियां अत्यन्त ठोस एवं स्थायी है। मांडले की जेल में उन्होंने गीता पर भाष्य (गीता रहस्य) लिखा। उन्होंने यह प्रतिस्थापित किया कि, आध्यात्मिक स्वतंत्रता का सार मनुष्य के एकान्तवास में नहीं है तथा यह भी नहीं कि वह अपने व्यक्तित्व का नाश कर दे और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भूल जाय। 1 जून 1947 ई0 को एक प्रार्थनासभा में भाषण देते हुए गांधी जी ने कहा था कि, ''मैंने अन्तरात्मा का मूल्य तिलक महाराज से सीखा है''। जहां तक मैं तिलक के व्यक्तित्व को समझ पाया हूँ वे भगवद्गीता के शब्दों में स्थितिप्रज्ञ और त्रिगुणातीत थे।[2] मृत्यु को खड़ा देखकर भी वे पूर्णतः अविचलित रहे। बाल गंगाधर तिलक का दर्शन जीवन तथा कर्त्तव्य के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न करता है और जो असम्बद्ध घटनाओं, तथ्यों और प्रक्रियाओं का अव्यवस्थित पुंज प्रतीत होता है उसे वे अर्थ एवं प्रयोजन प्रदान करते हैं। लोकमान्य के मन में हिन्दूत्व की बड़ी विशद् धारणा थी।[3] वैदिक धर्म के प्रारम्भ को वे आर्यजाति के धर्म से संयुक्त मानते थे। यदि तिलक के इस विचार को हम ध्यान में रखें, सब वर्गों को एकीकृत करने का प्रयत्न करें तो हम उनको एक महान शक्ति के रूप में संगठित कर सकते हैं। हमारी एकता छिन्न–भिन्न हो चुकी है जो हमारी अधोगति का कारण है।

तिलक के समाज सुधार सम्बन्धी सिद्धान्त

पश्चिम की बुनियादी, वैज्ञानिक और गतिशील सभ्यता तथा भारत की धार्मिक, पुरातनपोषी और परम्परागत संस्कृति के बीच सम्पर्क के कारण समाज सुधार की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी थी। भारत में समाज सुधार के अनेक आन्दोलनों का उदय हुआ था। समर्थकों ने सामाजिक बदलाव एवं रूपान्तर का सबल समर्थन किया। इनमें से ब्रह्म समाज और प्रार्थनासभा जैसे आन्दोलन मंच पर पाश्चात्य विचारधाराओं और मूल्यों का गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा, मानव की गरिमा एवं लोकतन्त्र की अवस्था ने भारतवंशी चिंतकों तथा समाज सुधारकों को स्वतः आकृष्ट किया। यही कारण था कि भारत में समाज सुधार की पहल भारत–मूल के लोगों द्वारा किया गया। ''कृण्वन्तों विश्वमार्घ्म्'' तथा ''ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्यां'' जैसे सनातनी वाक्यों

को लेकर आर्य समाज ने समाज सुधार का बेड़ा उठाया। सती प्रथा के संस्थागत एवं विधिक विरोध में लार्ड विलियम बैंटिक के पीछे भारतीय महामानव राजाराम मोहन राय का मुख्य हाथ था। प्रार्थना सभा के लोगों ने विवाह हेतु न्यूनतम आयु सीमा के निर्धारण में ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। शारदा एक्ट, आर्य विवाह अधिनियम आदि का पारित होना सत्ता एवं समर्थन का सांगोपाग उदाहरण है। हिन्दुओं के समाज सुधार आन्दोलन सरकार द्वारा सामाजिक कानून बनाने के विरूद्ध नहीं थे। यहां यह ध्यातव्य है कि तिलक जी का दृष्टिकोण एकदम भिन्न था। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885 ई0) के समय से यह समस्या महत्वपूर्ण समझी जाने लगी थी कि 'राजनीतिक आन्दोलन तथा समाज सुधार के बीच का क्या सम्बन्ध हो ? 1885 ई0 में कांग्रेस के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बनर्जी के अनुसार कांग्रेस का एक उद्देश्य'' वर्तमान समय के अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और तात्कालिक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित वर्गों के विचारों की पूर्ण विवेचना करके उनके उन विचारों का अधिकृत लेखा तैयार करना'' भी था। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में इसे लेकर द्वन्द्व भी था जिसे हम कलकत्ता के कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में दादा भाई नैरोजी के घोषणा से समझ सकते हैं। ''राष्ट्रीय कांग्रेस को चाहिए की वह केवल अपने को उन्हीं प्रश्नों तक सीमित रखे जिनमें सम्पूर्ण राष्ट्र प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो सके। समाज सुधार की समस्याओं तथा अन्य वर्गगत प्रश्नों को उन वर्गों के उपर ही छोड़ दिया जाना चाहिए''।

बालगंगाधर तिलक भी राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं को एक साथ मिलाने के विरूद्ध थे। उनके चिंतन में प्राथमिकता स्पष्ट थी।[8] पहले राजनीतिक प्रगति बाद में सामाजिक उत्कर्ष एवं सुधार। वे मानते थे कि सामाजिक सुधार एवं प्रयत्नों पर धीर–धीरे विचार किया जा सकता है। उनके केसरी में प्रकाशित अनेक लेख इस संदर्भ को प्रमाणित करते हैं। वे तात्कालिक एवं अविकल सामाजिक क्रांति के कट्टर शत्रु थे।[9] उनका मानना था कि, सामाजिक परिवर्तन उसी प्रकार धीरे–धीरे और स्वतः आ जायेंगे जैसे–जैसे प्रगतिशील शिक्षा के प्रति बढ़ती जागृति होगी। यही परिवर्तनों का मुख्य साधन होना चाहिए जो सुधार उपर से थोपे जाते हैं और जिनमें 'दण्ड' का भय होता है वे सुधार यांत्रिक होते हैं। उनसे समाज के जीवन की विद्यमान व्यवस्था के छिन्न–भिन्न होने का डर लगा रहता है। समाज विकासशील अवयवी के सदृश है। समाज सुधार के प्रश्नों को लेकर गुट एवं वर्ग उत्पन्न करके उसकी एकता एवं सुदृढ़ता को भंग करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।[10] बालगंगाधर तिलक के इस क्रमिक एवं स्वतः स्फूर्त सामाजिक सुधार को आज हम अपने पूर्ण

प्रभावोत्पादकता में देख सकते हैं। इसके अपेक्षाकृत स्थायी परिणाम/प्रभावों का आकलन भी कर सकते हैं। वे सामाजिक सुधार जो विश्व में बाहर से लादे गये उनकी अवनति एवं उन सुधारों का असर जो स्वतः समाज के अन्दर से परिवर्धित हुये थे, का स्थायी भाव, सामाजिक कलेवर दोनों अलग–अलग हैं। विश्व की अनेक नस्लीय घटनाओं में इसे देखा जा सकता है।

बालगंगाधर तिलक के सामाजिक सुधारों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन में एक नया उभार उत्पन्न करना था, इसलिए वे जनता के समक्ष परस्पर विरोधी सामाजिक दर्शनों को प्रस्तुत करके उनके मन में भ्रम पैदा करने के विरूद्ध थे।[4] वे सामाजिक जीवन में फूट डालने एवं परस्पर विरोधी विघटनकारी प्रभावों को प्रोत्साहन देने के पक्ष में नहीं थे। लोकमान्य का विचार था कि प्रगतिशील समाजों का परिवर्तन प्रतिदर्श पाश्चात्य जगत के प्रतिदर्शो से भिन्न होना चाहिए। भारत में यह धीरे–धीरे किया जाना चाहिए। यह परिवर्तन उन लोगों की प्रेरणा से किया जाना चाहिए जो उस समाज के श्रद्धेय हों जिनके नेतृत्व के प्रति, हिन्दू आदर्शों में आस्था के प्रति लोगों में श्रद्धा हो। समाज सुधार का आधार नैतिक होना चाहिए। नेतृत्व की नैतिकता असंदिग्ध होनी चाहिए। अप्रतिष्टित तथा कालबाधित धारणाओं को समाज सुधार का आधार बनाना उचित नहीं होगा। ''वयं राष्ट्रे संगमनी'' अर्थात् समाज सुधार का सम्बन्ध भारतीय जीवन तथा संस्कृति से जुड़ा होना चाहिए। तिलक प्रगति चाहते थे किन्तु लोकभावना के अनुरूप।[5] वे समाज तथा राष्ट्र के इतिहास तथा उसके विकास को यथेष्ठ महत्व देते हैं।

19वीं तथा 20वीं शताब्दी के अन्यान्य वैश्विक समाज सुधारकों की संयुति ध्वनि से तिलक अप्रभावित रहे। तिलक का मानना था कि, भारत की संरचनात्मक और सांस्कृतिक विविधता स्वतः प्रमाणित है। यह विविधता उन विभिन्न तरीकों को आकार देती है जिसमें आधुनिकीकरण या पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण या पंथ निरपेक्षीकरण, विभिन्न समूहों के लोगों को अलग–अलग प्रभावित करते हैं या प्रभावित नहीं करते। आधुनिकता के कारण न केवल नए विचारों का मार्ग खुला बल्कि परम्परा पर भी पुनर्विचार हुआ और उसकी पुनर्विवेचना भी हुयी। संस्कृति एवं परम्परा दोनों का ही अस्तित्व सजीव है। बालगंगाधार तिलक का मानना था कि लगभग 150 वर्षों के ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप भारत के सामाजिक सरोकारों में आये परिवर्तन के प्रमुख पहलू जैसे–प्रौद्योगिकी, संस्था, विचारधारा और मूल्य है जिसके कारण भारत में उप सांस्कृतिक प्रतिमान बनने प्रारम्भ हुए हैं। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग (अंग्रेजी शिक्षित) की उपसंस्कृति बननी शुरू हुयी है संभव है समाज सुधार के रूप में इसका विस्तार भी हो। किन्तु

तिलक यहां दृढ़ता से ऐसे प्रतिमानों को ग्रहणीय नहीं मानते।

संस्थाओं की प्रामाणिकता पर समाज सुधार के सन्दर्भ में उन्होंने इस प्रस्थापना का विरोध किया कि, अंग्रेजी सत्ता प्राप्त करने के पूर्व हमें समाज सुधार कर लेना चाहिए।[6] आयरलैण्ड के समाज सुधार पूरे हो जाने के बाद भी वहां अंग्रेजों ने सत्ता नहीं छोड़ी इस स्थिति से तिलक भयभीत थे[7] यह स्वाभाविक भी था क्योंकि भारत में राजनीतिक सुधारों की गति अत्यन्त मंद थी। 1898–99 में तिलक ने श्रीलंका एवं वर्मा की यात्रा की। अपने यात्रा वृत्त में उन्होंने देखा कि उन देशों में भारत से कहीं अधिक सामाजिक स्वतंत्रता है, किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में वे फिर भी पिछड़े हुय थे। तिलक पर यह आक्षेप किया जाता है कि वे– देश की समस्याओं से सम्बन्धित व्यक्तियों के बीच श्रम–विभाजन के सिद्धान्त का समर्थन करने लगे हैं। किन्तु यह सर्वथा उचित नहीं है क्योंकि कालक्रम की दृष्टि से एवं भारतीय स्वाधीनता संग्राम की फलकीय दृष्टि से किसी एक व्यक्ति द्वारा उस समय यह सब किया जाना संभव प्रतीत नहीं हो रहा था। अतः तिलक जी सामाजिक सुधारों को पूरा करने के लिए अन्य लोगों का आह्वान करते दिखायी दिये। राष्ट्र का जीवन एक अविच्छिन्न ऐतिहासिक और मानसिक प्रवाह है।[11]

समाज सुधार के प्रति तिलक के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण तत्व यह था कि वे सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में नौकरशाही के हस्तक्षेप के विरूद्ध थे। तिलक का यह विश्वास था कि, जब कोई सामाजिक कानून बनाया जायेगा तो उसे लागू करना पड़ेगा और उसे भंग करने के सम्बन्ध में उठने वाले विवादों का निर्णय करने की आवश्यकता होगी इससे ब्रिटिश शासकों एवं न्यायधीशों की शक्तियों में वृद्धि हो जायेगी। इस विरोध के पीछे तिलक का यह भी मानना था कि आज तक समाज का संदर्भ, धर्म का संदर्भ सत्तात्मक हस्तक्षेप से लगभग मुक्त रहा है, हम सुधारों की याचना करें यह उचित नहीं है क्योंकि याचक कभी स्वराज्य नहीं ले सकता। ऐसे प्राप्त स्वराज्य की नैतिक एवं बौद्धिक नींव कमजोर होगी। यह तिलक की गहरी देशभक्ति की भावना को दर्शाता है।[12] तिलक को पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त समाज सुधारकों का रवैया पसन्द नहीं था। क्योंकि ऐसे लोग न सिर्फ समाज में पश्चिमी मूल्यों का प्रवेश कराना चाहते थे बल्कि वे हिन्दुओं की धर्म संहितओं तथा शास्त्रों का भी मखौल उड़ाया करते थे। तिलक पुरातनपोषी तथा इतिहासवादी थे जो जानते थे कि सामाजिक चेतना का विकास धीरे–धीरे हुआ करता है। आध्यात्मिक चरित्र के लोगों के नेतृत्व द्वारा समाज सुधार होने चाहिए जो हिन्दू जीवन प्रणाली के मूर्त रूप हों। इस रूप में उन्हें शास्त्रों में विश्वास था, वे स्वीकार करते थे कि, धर्मशास्त्र उन महापुरूषों की कृति है जो विवेक और समत्व बुद्धि से युक्त थे। अतः देशकाल के अनुसार शास्त्रों

में परिवर्तन और संशोधन भी किया जा सकता है। तिलक समाज सुधार को विदेशियों द्वारा उपर से लादने के विरूद्ध थे।

बालगंगाधर तिलक अपने सामाजिक सुधारों की वरीयता को निर्धारित करने में कुछ अन्य भारतीयों से असहमति रखते थे जैसे–आगरकर के साथ मतभेद, महादेव गोविन्द रानाडे के प्रति कटुता, रमाबाई के प्रारम्भिक समाज सुधार प्रयासों का विरोध आदि। किन्तु बालगंगाधर तिलक की स्पष्टता एवं स्वीकार्यता को हम दूसरे उदाहरणों में समझ सकते हैं जब वे गोविन्द राज लिमये कें साथ मिलकर 1891 में पूना में समाज सुधार के अग्रगण्य बन गये। 1890 में कलकत्ता के चतुर्थ सामाजिक सम्मेलन में आर0एन0 मुधोलकर के साथ आये। वयस्क विवाह का समर्थन किया। 1891 ई0 में नागपुर में जी0एस0 खापर्डे के साथ आकर विधवा विवाह भोज में बढ़–चढ़कर भाग लेने की वकालत किये। किन्तु समय–समय पर रानाडे–भण्डारकर तथा शारदा सदन पर तिलक के अभिमत[13] उनके समाज सुधाराग्रही होने पर आक्षेप लगा देते हैं।

किन्तु तिलक का तर्क विशिष्ट था। 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में जिन नेताओं तथा साधारणजनों ने भारत में मुसलमानों के राजनीतिक आधिपत्य का विरोध किया था उन्होंने सामाजिक सुधारों के लिए भरपूर प्रयास नहीं किया। इसलिए तिलक जी ने 2 प्रस्तावनाएं निरूपित की। प्रथम सामाजिक सुधार को प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए। राजनीतिक अधिकारों के मिलने के बाद सामाजिक सुधार हो जायेगा। दूसरे–जो सामाजिक सुधार आवश्यक हों वे धीरे–धीरे और शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा लाये जायें। इस प्रकार तिलक को समाज की अवयवी प्रकृति में विश्वास था। उन्हें यह बहुत बुरा लगता था कि, जिन परिषदों में निर्वाचित भारतीय सदस्यों का बहुमत नहीं था उन्हें देश के सामाजिक भाग्य के निर्णय का काम सौंप दिया जाय। इस प्रकार तिलक का दर्शन भारत की गौरवमयी अस्मिता के परिरक्षण एवं भारतीय परिवेश से काल यथा क्रम जुड़ा हुआ था। जिन्हें समय की कसौटी पर कसा रहना चाहिए। आज का लोकतंत्र मानव की नागरिकता केन्द्रित अवस्था में है, समाज सुधार या राजनीतिक सुधार हो उस परिवेश एवं राष्ट्र के लोग अपने लिए स्वयं सम्पादित कर रहे हैं फलतः आज सुधार स्थायी एवं शांतिपूर्ण हो रहे हैं। बालगंगाधर तिलक की प्रासंगिकता को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. *गोखले, जी0के0, : ''स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ तिलक'' जी0ए0 नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास पृष्ठ–321, 354 एवं 256 अन्य पृष्ठों पर।*
2. *बालगंगाधर तिलक–''गीता रहस्य'' (हिन्दी संस्करण–पूना 1950, पृष्ठ 506)*

3. *27 और 28 अप्रैल 1916 में बेलगांव में बम्बई प्रान्तीय सम्मेलन में दिया गया उनका भाषण।*
4. *वी0पी0 वर्मा, : 'स्टडीज इन हिन्दू पोलिटिकल थॉट एण्ड इट्स मेटाफिजिकल फाउण्डेशन, वाराणसी, 1954, पृष्ठ 237–239*
5. *पाल, वी0सी0 : ''द सोल ऑफ इण्डिया'', कलकत्ता, चौधरी एण्ड चौधरी, 1911 पृष्ठ 316*
6. *पाल, वी0सी0 : ''स्वराज्य'', बम्बई बाघवानी एण्ड कम्पनी, 1922, पृष्ठ 42*
7. *जोशी, वी0सी0 (सम्पादित) :, ''आटो बायोग्राफिकल राइटिंग्स ऑफ लाजपत राय'', दिल्ली 1965, यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स, पृष्ठ 16–19*
8. *केलकर, एन0सी0, : ''लाईफ ऑफ तिलक''*
9. *केसरी में प्रकाशित लेख से साभार।*
10. *रानाडे, एम0जी0 (सम्पादित) एम0वी0 कोलस्कर द्वारा, : ''ऐसेज इन रिलीजियस एण्ड सोशल रिफार्म्स, बम्बई, 1915, मनोरंजन प्रेस।*
11. *घोष, बाबू अरविन्दो, : ''बालगंगाधर तिलक : हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज'', 2018, क्रियेटिव मीडिया पार्टनर्स।*
12. *मोरे, डा0 सदानन्द, : ''लोकमान्य बालगंगाधर तिलक'', सकल प्रकाशन, 2019 ISBN-109387408906*
13. *वर्मा, ड0 वी0पी0, : ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन'' , 1989, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक।*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-69-73

1857 के विद्रोह में इलाहाबाद (प्रयागराज) की भूमिका

डॉ० अरुण कुमार सिंह

सन् 1857 की क्रान्ति का ज्वालामुखी ऐतिहासिक नगर इलाहाबाद तथा आस–पास के गाँवों में फूटा, पर यह अल्पकालीन ही रहा। फिर भी जिस प्रकार से लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ जंग लड़ी और बलिदान दिया, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। इलाहाबाद में क्रान्ति की चिन्गारी को प्रयाग के पंडों ने भी हवा दी थी, लेकिन जनता ने अपना नेतृत्व मौलाना लियाकत अली को सौंपा। इस स्वतन्त्रता सेनानी ने ऐतिहासिक खुसरोबाग को स्वतन्त्र इलाहाबाद का मुख्यालय बनाया। खुसरोंबाग मुगल सम्राट जहाँगीर के पुत्र शहजादा खुसरो द्वारा बनवाया गया था। इस विशाल बाग के अमरूद विश्व प्रसिद्ध हैं। मौलाना लियाकत अली को चायल के जागीरदारों और जनता का भरपूर सहयोग मिला। बहादुरशाह ज़फर तथा बिरजिस कद्र ने इन्हें इलाहाबाद का गवर्नर घोषित किया था। बिरजिस कद्र की मुहरवाली घोषणा को शहर में जारी कर, लियाकत अली ने लोगों से अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने की अपील की। उन्होंने अपने भरोसेमन्द हरकारों की सहायता से इलाहाबाद के क्रान्ति की सूचना दिल्ली भिजवायी, बेगम हजरत महल समेत अन्य बड़े क्रान्ति नायकों के सम्पर्क में थे। मौलाना ने शासन थामते ही तहसीलदार, कोतवाल और अन्य अफसरों की नियुक्ति कर नगर में शान्ति स्थापना का प्रयास किया।

शब्द कुंजी : इलाहाबाद, क्रान्ति, नेहरू, अंग्रेज, घटना, महिलाएं

इलाहाबाद में क्रान्ति दबाने के लिए अंग्रेजों ने प्रतापगढ़ से सेना भेजी, पर 5 जून 1857 को बनारस के क्रान्तिकारी भी यहाँ पहुँच गये और समसाबाद में साफीखान मेवाती के घर पर एक पंचायत जुटी। इसमें तय किया गया कि सैनिक और जनता एक ही दिन क्रान्ति की ज्वाला जलाएँ, किन्तु इसी बीच अंग्रेज सेनाधिकारी सतर्क हो गये और उन्होंने किले की हर हाल में रक्षा करने की रणनीति बनायी। ''अंग्रेजों ने बागी हवाओं के आधार पर खतरे की आशंका भाँपकर बनारस से आने वाले क्रान्तिकारियों को रोकने के लिए देशी पलटन की दो टुकड़ियाँ और दो तोपें दारागंज के करीब नाव के पुल पर तैनात कर दी गयी थीं। किले का तोपों को बनारस की ओर से आने वाली सड़क पर मोड़ दिया गया था। नगर रक्षा में अलोपीबाग में देशी सवारों की दो टुकड़ियाँ तैनात थीं, जबकि किले में 65 तोपची 400 सिक्ख सवार और पैदल तैनात कर दिये गये थे, उसी समय दारागंज के पंडों ने इन सैनिकों को बगावत के लिए ललकारा। अंग्रेजों को इसकी आहट मिली तो उन्होंने सैनिकों को प्रलोभन देकर 6 जून की

**सहायक आचार्य इतिहास विभाग, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, आजमगढ़ (उ०प्र०)*

रात 9 बजे तोपों को किले में ले जाने का आदेश दे दिया, लेकिन सैनिकों ने बगावत का फैसला ले लिया था। वे तोपों को छावनी में ले गये जहाँ से वे अंग्रेजों पर गोले दागने शुरू कर दिये गये।" इस घटना ने इलाहाबाद में बगावत का रूप ले लिया। हालात काबू में लाने के लिए दो सेनाधिकारी और सहायता के लिए देशी पलटन को आदेश मिला, पर सैनिकों ने क्रान्तिकारियों के खिलाफ हथियार उठाने से मना कर दिया और वे उनके साथ हो गये। अलोपीबाग के सैनिकों ने लेफ्टीनेंट अलेक्जेंडर को गोली मार दी, पर लेफ्टीनेंट हावर्ड जान बचाकर किले की ओर भागा। इसके बाद दोनों पलटनों के अधिकतर यूरोपीय अधिकारी मार दिये गये और अफसरों के बंगले जला दिये गये, किन्तु इस घटना से अधिकारियों को और सतर्क कर दिया। ऐसा माना जाता है कि अगर उस समय सिक्ख सैनिक भी आन्दोलन की इस धारा में शामिल हो गये होते तो इलाहाबाद का किला भी क्रान्तिवीरों के कब्जे में आ जाता। वैसे तो अंग्रेजों की रणनीति को देखते हुए बागी भी सजग ही थे और उन्होंने दारागंज और किले के नजदीक की सुरक्षा चौकी पर कब्जा कर लिया। यही नहीं पूरा नगर बगावत की चपेट में आ गया। तीस लाख रुपये का खजाना भी उनके कब्जे में आ गया। बागी नेताओं ने जेल से बन्दियों को मुक्त करा दिया और तार की लाइनें भी काट दी।

इलाहाबाद के निवासी और जाने–माने इतिहासकार व राजनेता विश्वम्भर नाथ पाण्डेय लिखते हैं, ''हर संदिग्ध को गिरफ्तार कर उसे कठोर दण्ड दिया गया। नीला ने जो नरसंहार किया उसके आगे जलियावाला बाग काण्ड भी कम था। केवल तीन घण्टे चालीस मिनट में कोतवाली के पास नीम के पेड़ पर ही 634 लोगों को फाँसी दी गयी। सैनिकों ने जिस पर शक किया उसे गोली से उड़ा दिया गया। चारों तरफ भारी तबाही मची थी। नील क्रान्तिकारियों को गाड़ी में बिठाकर किसी पेड़ के पास ले जाता था और उनकी गर्दन में फाँसी का फन्दा डालवा देता था, फिर गाड़ी हटा दी जाती थी। इलाहाबाद के नर संहार में औरतों, बूढ़े लोगों और बच्चों तक को मारा गया, जिन्हें फाँसी दी गयी, उनकी लाशें कई दिनों तक पेड़ों पर लटकती रही। महान क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद को समर्पित बाग (कम्पनी बाग) का कूँआ लाशों से पट गया था। समय के थपेड़े ने दुनिया बदल दी है, पर नील के अत्याचारों के गवाह के रूप में एक नीम का पेड़ अभी भी बचा हुआ है।" इलाहाबाद में क्रान्ति की ज्वाला अल्पजीवी होने के बाद भी मौलाना लियाकत अली के नेतृत्व में इलाहाबाद के वीरों ने अंग्रेजी हुकूमत का डटकर मुकाबला किया। मौलाना लियाकत अली को जब गोरों की तैयारियों की पुख्ता खबर लगी तो उन्होंने अपने साथियों से विचार–विमर्श कर आगे की लड़ाई की तैयारी को परिजनों व करीबी सहयोगियों के साथ

कानपुर में नाना सहेब के पास चले गये। अंग्रेजों ने उनकी गिरफ्तारी पर पाँच हजार रुपये ईनाम रखा, लेकिन मौलाना दक्षिण होते हुए मुंबई पहुँच गये, जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और अ.डमान की जेल में भेज दिया गया। उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली थी और जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने वहीं बिताये और उनकी मौत भी वहीं हुई। उनकी मजार कालापानी में ही बनी है। मौलाना लियाकत अली के परिजनों के कुछ लोग आज भी महगाँव में रहते हैं। अतः मौलाना लियाकत अली असाधारण योग्यता व क्षमता वाले व्यक्ति थे, उन्होंने मजबूत व्यूह रचना के साथ इलाहाबाद किले पर कब्जा करने का प्रयास किया था, किन्तु सफल न हो सके। मुगल सम्राट अकबर ने 1583 में संगम के तट पर इस किले का निर्माण कराया, यही किला 1857 में अंग्रेजों का मजबूत ठिकाना साबित हुआ। यह किला 1798 में अवध के नवाब ने अंग्रेजों को सौंपा था। अंग्रेजों ने किले को अपना शस्त्रागार और सैनिक केन्द्र बनाया। अगर यह किला बागियों के हाथ में आ गया होता तो शायद इलाहाबाद ही नहीं अवध की क्रान्ति का एक नया इतिहास लिखा जाता, किन्तु होना तो कुछ और ही था। इलाहाबाद अपनी उस वीरांगना बेटी को कैसे भूल सकता है, जिसका नाम दुर्गा भाभी था।

सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति में भी इलाहाबाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इलाहाबाद में 10 अगस्त को पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा मोहम्मद अली ने पार्क में नागरिकों ने सभा की। 11 अगस्त को छात्रों ने एक विशाल जुलूस का आयोजन किया। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। दूसरे दिन 12 अगस्त को जुलूस निकला। इसका नेतृत्व लड़कियाँ कर रही थी गोलियाँ चलती रहीं, परन्तु जुलूस आगे बढ़ता ही गया। लड़कियों ने भारी हिम्मत से काम लिया। उन्होंने घुड़सवारों के घोड़ों की लगाम तक पकड़ने का साहस किया।

"सरकार ने अपने दमनचक्र में कोई कमी नहीं रखी। खूब गोलियाँ चलीं। बैजन नामक व्यक्ति को इसलिए गोली मारी कि वे जनता को जोश दिला रहे थे। दौलतराय उर्फ बंगाली सोनार गोली से मारा गया। अहियापुर के राजा पण्डित को गोली लगी। कटू अहीर तथा यासीन को गोली लगी। पथधार सिंह नामक विद्यार्थी 12 अगस्त को गोली के शिकार हुए। गोली खाने वालों में 14 वर्षीय छात्र रमेश मालवीय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बलूची सैनिकों के हाथ ये शहीद हुए।" वास्तव में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को इलाहाबाद ने नयी दिशा दी थी। 1857 की क्रान्ति हो अथवा बाद के स्वतन्त्रता हेतु किया जाने वाला संघर्ष, इलाहाबाद अग्रणी रहा है। यहाँ के क्रान्तिकारियों ने सदैव आगे बढ़कर क्रान्ति का नेतृत्व किया है। सैकड़ों सपूतों ने आजादी के लिए अपने प्राणों की आहूति दे दी। देश की आजादी में इलाहाबाद का अमूल्य योगदान रहा है,

इसे भुलाया नहीं जा सकता। स्वतन्त्रता संघर्ष में इलाहाबाद ने किस प्रकार नेतृत्व किया, इसके निशान आज भी यहाँ मौजूद हैं, चौक का वह नीम का पेड़ 1857 की खूनी क्रान्ति का प्रमाण है, जहाँ कर्नल नील ने सैकड़ों क्रान्तिकारियों को फाँसी पर लटका दिया था।

यह संगम नगरी 1857 के संग्राम से लेकर 1947 मे आजादी तक अंग्रेजों की यातना के विरुद्ध इलाहाबादी वीर सपूतों के हौसले का गवाह है। यहाँ महात्मा गाँधी जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने स्वतन्त्रता संघर्ष की नीतियों को तय किया और देश को आजाद कराने के लिए युवाओं को जागृत किया। स्वतन्त्रता संग्राम में इलाहाबाद के योगदान की बात करें तो यहाँ की हर सड़क, हर गली में जंग–ए–आजादी की कहानी छिपी है। दीवारों पर आजादी की लड़ाई की दास्तान है। इलाहाबाद क्रान्तिकारियों का ठिकाना था। क्रान्ति की आग को पूरे देश में फैलाने वाले चन्द्रशेखर आजाद यहीं अल्फ्रेडपार्क में शहीद हुए। आजादी में शहर के योगदान को लेकर बच्चों से लेकर बूढ़ों तक ने बढ़–चढ़कर सहभाग लिया। 'आनन्द भवन स्वाधीनता संग्राम का केन्द्र बिन्दु हुआ करता था। मोतीलाल नेहरू जाने–माने वकील होने के साथ ही आजादी की लड़ाई में गाँधी जी के अहिंसात्मक जंग के सिपाही भी थे। आनन्द भवन ही स्वतन्त्रता संग्राम और स्वराज की जंग का पूरे उत्तर भारत में केन्द्र था। अंग्रेजी सरकार से छिपकर सरदार पटेल, महात्मा गाँधी, आचार्य कृपलानी, राजेन्द्र प्रसाद, लियाकत अली जैसे अनेक स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी यहाँ पर बैठकें करते थे। गाँधी जी उस दौरान अक्सर इलाहाबाद आते थे तो आनन्द भवन में ही ठहरते थे।

अतः अंग्रेजों के खिलाफ शुरू हुए विद्रोह और आजादी के आन्दोलन की शुरुआत ही भले कहीं से हुई हो, लेकिन जब भी इससे जन विद्रोह की शुरुआत की बात होगी, तो सबसे पहले इलाहाबाद का नाम ही आयेगा। देश की आजादी में इलाहाबाद का अमूल्य योगदान रहा है। यहाँ पर मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि पुरुषोत्तम दास दण्डन, पं० मदनमोहन मालवीय, शालिगराम जायसवाल जैसे अनेक नाम हैं, जिन्होंने आजादी की लड़ाई के सालों तक संघर्ष किया और अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। क्रान्तिकारियों के लिए भी यह शहर गढ़ हुआ करता था। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद यहीं पर शहीद हुए। शहर की कई ऐसी इमारतें हैं, जो आज भी आजादी के मतवालों की शौर्य गाथा सुनाती है। साउथ मलाका स्थित जेल में कितने आजादी के सिपाहियों ने अंग्रेजों की यातना सही, लेकिन देश को आजाद कराने में कोई कसर नहीं छोड़ा और

अपने संकल्प से भी विचलित नहीं हुए। इन क्रान्तिकारियों ने जीवनपर्यन्त संघर्ष किया और देश को स्वतन्त्र कराया। 15 अगस्त सन् 1947 को देश गुलामी की जंजीरों से मुक्त होकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में प्रत्यक्ष हुआ और देश के पहले प्रधानमन्त्री बने पं० जवाहरलाल नेहरू, जो इलाहाबाद के थे। नेहरू जी के प्रधानमन्त्री बनने से इलाहाबाद की जनता आह्लादित हो उठी।

सन्दर्भ

1. *श्रीवास्तव, शशिप्रभा–स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2005.*
2. *सिंह, ठाकुर प्रसाद–स्वतन्त्रता आन्दोलन और बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2015.*
3. *वर्मा, डॉ० एस०आर० – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (1857–1947), एस०वी०पी०डी० पब्लिसिंग हाउस, आगरा, संस्करण–2010.*
4. *चतुर्वेदी, अवधेश कुमार–भारत का स्वाधीनता संग्राम, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, नयी दिल्ली, संस्करण–2002.*
5. *देवसरे, हरिकृष्ण–स्वतन्त्रता का महासंग्राम, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, नयी दिल्ली, संस्करण–2007.*
6. *श्रीवास्तव, रामसेवक–स्वतन्त्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, संस्करण–2005.*
7. *भार्गव, वी०एस० – भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–2006.*
8. *पुरोहित, गोबर्धन लाल–स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–2006.*
9. *सिंह, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद–भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (1857–1947), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2011.*
10. *निर्मोही, दीपचंद–1857 के स्वतंत्रता संग्राम की बहादुर महिलाओं की कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2012.*
11. *चौबे, देवेन्द्र–1857 भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2008.*
12. *शर्मा, डॉ० महेश–स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन, ज्ञान गंगा, दिल्ली, संस्करण–2016.*
13. *डॉ० महेन्द्र प्रताप–उत्तर प्रदेश के किसान आन्दोलन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2017.*
14. *विपिनचन्द्र एवं मुखर्जी, मृदुला–भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण–2015.*
15. *कश्यप, डॉ० सुभाष–स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, संस्करण–2015.*
16. *विपिनचन्द्र –आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, संस्करण–2015.*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-74-77

संसदीय लोकतंत्र में मंत्रीपद : सफलता की शर्तें

डॉ० बृजेश स्वरूप सोनकर

संसदीय लोकतंत्र में मंत्रिमडल वास्तविक कार्यपालिका होती है तथा समस्त कार्यपालिका शक्ति का वास्तव में प्रयोग वही करती है। मंत्रिमंडल ही सरकार को निर्देश देने वाली सर्वोच्च सत्ता होती है। वही शासन के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करती है। इस प्रकार मंत्रिमंडल का वास्तविक कार्य देश पर शासन करना होता है। संसद निर्णय करती है और मंत्रिमंडल उसे लागू करता है।

मंत्रिमंडल में संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल या बलों के गठबंधन के ऐसे नेता होते हैं जिन्हें पर्याप्त राजनीतिक तथा संसदीय अनुभव रहता है। काफी समय तक वे विपक्षी दल के रूप में काम कर चुके होते है, जो स्वयं शासन का एक प्रशिक्षण होता है। परन्तु कभी–कभी बड़े राजनीतिक उलटफेर होते है तथा विशेष परिस्थिति में संसदीय प्रक्रिया व व्यवहार से अनभिज्ञ लोग मंत्रिमंडल के सदस्य बन जाते हैं। अनेक बार ऐसा होता है कि पार्टी संगठन में महत्त्वपूर्ण पद पर रह चुके अथवा किसी विषय के विशेषज्ञ या पार्टी सुप्रीमो के नजदीकरी पहली बार सांसद या विधायक बनने पर कैबिनेट मंत्री का दर्जा पा जाते है।

शासन में अनेक विभाग होते है तथा कैबिनेट मंत्री किसी न किसी विभाग का प्रमुख होता है। विभागीय मामलों में वह जो भी निर्णय लेता है उसके पीछे मंत्रिमंडल की शक्ति होती है। किसी विभाग का मंत्री मंत्रिमंडल और संसद के आधीन होते हुए भी उस विभाग के लिए स्वयं पूर्ण उत्तरदायी होता है। सिद्धान्त संबंधी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय वह स्वयं करता है अथवा निर्णय के लिए मंत्रिमंडल के पास भेजा देता है। किसी विभाग में ऊपर से नीचे तक बड़ी संख्या में अधिकारी व कर्मचारी होते है जिन पर अंतिम नियंत्रण मंत्री का होता है।

मंत्री को विभाग का प्रधान बनाने का कारण यह है कि इससे सरकार पर जनता का वास्तविक नियंत्रण स्थापित हो जाता है। विभागों के राजनीतिक प्रधान सर्विस को यह इंगित करते हैं कि जनता अधिकारियों की सर्वोच्चता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। सर विलियम हारकोर्ट के इस कथन में कुछ सच्चाई है कि– ''यदि देश पर स्थायी अधिकारियों (सिविल सेवियों) का शासन

**असिस्टेन्ट प्रोफेसर ,राजनीति विज्ञान विभाग, कर्म क्षेत्र महाविद्यालय इटावा (उ०प्र०)*

हो तो बारह या अठारह महीनों तक तो यह व्यवस्था सफलता पूर्वक चलेगी पर इसके बाद जनता सिविल सेवा के सभी प्रधानों को निकटतम प्रकाश स्तंभों पर लटका देगी।[1]

एक मंत्री के लिए किन गुणों की आवश्यकता होती है? सर आइवल जेनिग्स के मत से–''मंत्री की सबसे बड़ी प्राथमिक योग्यता उसकी ईमानदारी व निष्कलंकता है। उसमें इन गुणों का होना पर्याप्त नहीं बल्कि यह भी आवश्यक है कि लोगों को उसमें ये गुण दिखाई दे।[2] प्रोफेसर हेराल्ड जे०लास्की का मत है कि–मंत्रीमंडल तक पहुँचने के लिए उन्हें चरित्र, व्यवहार, बुद्धि, निर्णय तथा संकट का सामना करने की शक्ति आदि कुछ विशिष्ट गुणों का परिचय देना होता है, क्योंकि वह यह गुण है जिसके ऊपर सफल प्रशासन की नीव खड़ी होती है।[3] ब्रिटेन के प्रसिद्ध प्रधानमंत्री लार्ड एस्क्विथ ने कहा था कि किसी मंत्री को कभी भी ऐसी स्थिति में नहीं डालना चाहिए अथवा पड़ने देना चाहिए अथवा अपने सरकारी प्रभाव को किसी ऐसी योजना का समर्थन या किसी ऐसे ठेके संवर्धन में नहीं लगाना चाहिए जिसमें उसका व्यक्तिगत प्रकट स्वार्थ सन्निहित हो।

मंत्री को संसद का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए। मंत्री होने के पूर्व यदि उसका काफी समय संसद में व्यतीत हुआ है या विपक्ष में रहते हुए अनुभव अर्जित किया है या मंत्री बनने के पहले उपमंत्री का अनुभव रहा है तो ही उसे कैबिनेट मंत्री बनाना चाहिए। अनुभव से मंत्रियों के सामने कोई कठिनाई नहीं आती है। एक लम्बे विवरण को एक ही बार पढ़कर सार संक्षेप समझ लेने की योग्यता केवल अनुभव द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अनुभवहीन मंत्री को किसी समस्या की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए संबंधित वितरण को कई बार पढ़ना पड़ेगा। कनिष्ठ मंत्री जैसे राज्यतंत्री (कुल अपवाद छोड़कर) या उपमंत्री निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रहते है पर इसका अच्छा अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए मंत्री के लिए अनुभव जरूरी है हालांकि व्यवहार में इसे लाना सदैव संभव नहीं हो पाता है।

मंत्री के लिए विभाग के कार्य में विशेषता जरूरी नहीं है। विशेषज्ञों से हमेशा यह खतरा रहता है कि वह दृष्टिकोण की व्यापकता को त्याग दे और बाल की खाल निकालने के चक्कर में पड़ जाए। मंत्री की राय विशेषज्ञों से भिन्न हो सकती है। मंत्री को अनेक पहलुओं से विशेषकर जनभावना के दृष्टिकोण, मीडिया की प्रतिक्रिया, निर्णय के राजनीतिक प्रभाव आदि से सोचना पड़ता है। विशेषज्ञ केवल मामले के गुण दोष के बारे में ही सोचते हैं। हेराल्ड जे०लास्की

के मत से–यही कारण है कि सिविल सर्वेन्ट, सिपाही, नागरिक व व्यापारी अपना काम तो अच्छी तरह कर सकते हैं लेकिन उसका सफल मंत्री होना आवश्यक नहीं है।[4] सर आइवल जेनिग्स का भी मत है कि–''मंत्री का कार्य यह है कि उसके सामने जो भी समस्या रखी जाये वह उस पर स्वतंत्र मस्तिष्क से विचार करे, अपने विशेषज्ञों के विचारों को समझे और उसका औचित्य जाने या सामान्य बुद्धि के आधा पर विशेषज्ञों के मतभेदों को दूर करे। उसका दृष्टिकोण जितना व्यापक होगा उल्झन पूर्ण समस्याओं को समझने में अतनी आसानी होगी। जो मंत्री यह अनुमान नहीं लगा पाता कि उसके किस कार्य का परिणाम स्वयं उसके विभाग पर विशेषकर कामन सभा पर और जनमत पर का होगा, वह घातक सिद्ध हो सकता है।[5]

मंत्री छोटी–छोटी बातों पर माथापच्ची न करे बल्कि विभाग को सुनिश्चित निर्देश दें। वह पीन, बावर्ची, भिश्ती, सब कुछ बनने का प्रयास न करें। विभाग में इतने कात होते है कि मंत्री विभाग के कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों पर ही प्रतिदिन निर्णय ले सकता है। वह हर मामले पर निर्णय लेने का प्रयास न करे। उसका मुख्य काम विभाग की नीति का सरकार की सामान्य नीति से तालमेल बनाए रखना है। वह योग्य तथा सक्षम अधिकारियों को अधिकतर मामलों के निर्णय का काम सौपे और उन्हें एहसास कराए कि उनके निर्णयों एवं कार्यों को देखा जा रहा है। जेनिग्स के शब्दों में ''यदि वह अपने को पूर्ण रूप से विभागीय कार्यों में लगा देगा तो मंत्री न रहकर एक प्रशासक बन जाएगा।[6] मंत्री को यह देखना चाहिए की देश दुनियाँ में क्या हो रहा है। उन विचारों व प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना चाहिए जो कि जनमत संसद और मीडिया के माध्यम से व्यक्त होती है। उसे उन व्यक्तियों से मिलने व बातचीत करने में संकोच नही करना चाहिए। जो कि उसे नया विचार दे सकते है।

मंत्री को जनसाधारण के विचारों का एक समझना चाहिए। उसके निर्णय जनमत या दल के विचारों के अनुकूल हो। बहुत से मंत्री असाधारण व्यक्तिगत वाले होते है पर अक्सर वे जनसाधारण के विचारों को समझने में असफल रहते है। मंत्री को निरंतर पूरे देश का दौरा करना चाहिए, समाज के विभिन्न स्तरों एवं वर्गों के लोगों से मिलना चाहिए जिससे कि वह जनमत के बदलते रूख को समझ सके और तदानुसार जनहित में निर्णय ले सके।

मंत्री को सदन के भीतर अपने दल तथा प्रतिपक्ष के सांसदों–विधायकों की बातों को ध्यान से सुनना चाहिए तथा उनकी स्वस्थ आलोचना को लोकतंत्र के हित में समझना चाहिए। व्यवस्थापिका की भावनाओं के अनुरूप अपने विभाग को

ढालकर मंत्री अपनी लोकप्रियता में वृद्धि तथा संसदीय लोकतंत्र को मजबूत बनाने में योगदान कर सकता है।

सन्दर्भ

1. *जेनिग्स, सर आइवर 'मंत्रिमंडलीय शासन' शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1969, पृष्ठ –147*
2. *उक्त पुस्तक, पृष्ठ–127*
3. *लास्की हेराल्ड जे०इग्लैण्ड का संसदीय शासन एस०चाँद एंड कम्पनी 1968 पृष्ठ– 137*
4. *उक्त पुस्तक, पृष्ठ–138*
5. *जेनिग्स सर आइसर 'मंत्रिमंडलीय शासन' 1969 पृष्ठ–142*
6. *उक्त पुस्तक पृष्ठ– 143*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-78-83

वैदिक काल एवं वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति

*डॉ० नीलम सोनी**

सारांश

यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त्राफलाः क्रियाः।।

उपरोक्त श्लोक का अर्थ है जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते है और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती उनका सम्मान नहीं होता किये गये समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है नारियों को सम्मान देना क्योंकि प्राचीन काल से ही नारी को पूजनीय माना गया है। नारी के कई रूप है जैसे कन्या, पुत्री, बहन, माँ, बेटी, पत्नी वह जीवन में कई भूमिकाओं को निभाती है। यह सभी एक मातृ शक्ति की विभिन्न अवस्थाएँ है। ऐसा माना जाता है कि जीवन सामाजिक ताने बाने की वही आधारशिला है। महिलाओं की सर्वश्रेष्ठ स्थिति वैदिक काल में थी वैदिक साहित्य से हमें कई विदुषी नारियों के उल्लेख मिलते है जिनमें लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्वारा सिकता, निवावरी जैसी विदुषी कन्याओं द्वारा अनेक ऋचाएँ रची हुयी है समय के साथ–साथ महिलाओं की सामाजिक राजनीतिक धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलते है। इतिहास गवाह है कि उन्हें जब भी मौका मिला है उन्होंने अपने दायित्व को बखूबी निभाया देश की आजादी में वह पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चली। वर्तमान समय में महिलाओं ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की है। सभी क्षेत्रों में उसने अपनी पकड़ बना रखी है। महिला सशक्तीकरण के कारण वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुयी। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य की वैदिक कालीन नारी एवं वर्तमान युग की नारी का तुलनात्मक विश्लेषण करना है।

बीज अक्षर–सशक्तीकरण उपनयन संस्कार, लोपा, मुद्रा

प्राचीन काल से ही महिलाओं को सम्मान देने की परम्परा भारतीय संस्कृति में रही है। भारत की प्राचीन सभ्यता सिन्धु सभ्यता से हमें खुदाई में अनेक मृण्ड मूर्तियाँ प्राप्त हुयी है जिनमें धुएँ के निशान है जिसके आधार पर हम अनुमान लगाते है कि देवी माता की पूजा की जाती होगी। सिन्धु सभ्यता में मातृसत्तात्मक सत्ता थी। सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भ में नारी है किन्तु कालान्तर में धीरे–धीरे सभी सामाजिक व्यवस्था मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गयी।

पूर्व वैदिक काल स्त्रियों की स्थिति बहुत सुद्रढ़ थी। इस काल में नारियों

* *असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, रामसहाय राजकीय महाविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०)*

को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। पुत्री को भी पुत्र के समान शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार प्राप्त थे उनका उपनयन संस्कार भी होता था। ब्रम्हाचर्य आश्रम में रहने के साहित्य ग्रन्थों में विवरण प्राप्त होते है। स्त्रियाँ सामाजिक समारोहों में भाग लेती थी। ऐसा माना जाता है कि स्त्रियाँ जितनी वैदिक काल में स्वतन्त्र थी उतनी स्वतन्त्र बाद के समय में नहीं रही उनको पुरूषों के ही समान अधिकार प्राप्त थे। वह शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ आदि में पुरूषों के ही समान सम्मिलित होती थी। कुछ ऐसी विदुषी नारियों के उल्लेख प्राप्त होते है जिन्होंने वेदों की अनेक ऋचाओं को रचा था। लोपामुद्रा, विश्वारा, सिक्ता, घोषा आदि जैसी विदुषी नारियों के उल्लेख मिलते है। जिन्होंने न केवल शिक्षा ज्ञान ही नहीं बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी निपुण थी। ब्रम्हायज्ञ में सुलभा, गार्गी, मैत्रीयी आदि विदुषियों के भी नाम मिलते है। जिनका सम्मान ऋषियों के ही समान था। बृहादारण्यक उपनिषद में ऐसे उदाहरण मिलते है जिनका उद्देश्य विदुषी पुत्री को प्राप्त करना था। उस समय विधवाओं को नियोग और पुर्नविवाह करने की छूट थी इसलिये इस काल में विधवाओं को बोझ नहीं समझा जाता था। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित सम्बन्धों का परिचायक है। वैदिक काल में पति या पत्नी सभी कार्यों में समान रूप से सभी गतिविधियों में भाग लेते थे। बिना उनके धार्मिक कार्य अधूरे माने जाते थे देवी अदिति चारों वेदों की प्रकाण्ड विदुषी थी। देवी शची को भी वेदों की प्रकाण्ड विद्वान माना जाता है। जिन्होंने ऋग्वेद के सूक्तों पर अनुसंधान किया। अर्थवेद में कन्या के ब्रम्हाचर्य आश्रम में रहने के उल्लेख मिलता है। मैत्रेयी भी अपने पति याज्ञवल्क्य के साथ दार्शनिक वाद विवाद में भी भाग लेती थी।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में कुछ ह्रास देखने को मिलते है। इस काल में पुत्री के जन्म के अशुभ माना जाने लगा। पूर्वजों के अनुष्ठान के कार्य को सिर्फ पुत्र ही सम्पादित कर सकते थे। इस काल में भी उनका उपनयन संस्कार होता था। उत्तर वैदिक काल में पुत्री को दुःखदायी एवं पुत्र को परिवार का रक्षक समझने लगे। वैदिक काल में कन्याओं का विवाह बड़ी अवस्था में होता था। अर्थवेद में पिता द्वारा पुत्री के विवाह में वर को एक सौ गाय दहेज में देने के उल्लेख प्राप्त होते है। एतेरेय ब्राम्हण में पत्नी को पति का मित्र बताया गया है। इस प्रकार हम वैदिक काल में साहित्यिक ग्रन्थों के उल्लेखों से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय परिवार में पत्नी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल में महिलायें अब धार्मिक कार्य स्वयं नहीं कर

सकती। उनको राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने पर भी पाबन्दी पाबंदी लगा दी गयी। इस प्रकार हम देखते है कि उत्तर वैदिक काल में उनकी स्थिति में पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा गिरावट देखने को मिलती है। वैदिक काल में बहु विवाह के भी उदाहरण प्राप्त होते है। वैदिक काल में स्त्रियों के व्यवसाय में भी निपुण होने के उल्लेख प्राप्त होते है। वह कृषि कार्य के अतिरिक्त कपड़े बुनना, सीना कशीदेकारी आदि में निपुण थी। वह धनुष एवं बाण भी बनाती थी। पूर्व वैदिक काल में पति एव ंपत्नी दोनों धार्मिक कार्य में भाग लेते थे, उनका उपनयन संस्कार भी होता था लेकिन उत्तर वैदिक काल में बहुत से धार्मिक अनुष्ठान केवल पति करने लगे क्योंकि धार्मिक कार्यों में जटिलता आ गयी थी। ऐतरेय ब्राम्हण के उल्लेख से पता चलता है कि पत्नी का धार्मिक कार्यों में भाग लेना अनिवार्य नहीं समझा जाता था। धार्मिक कार्यों में जटिलता आ जाने के कारण उनकी सामाजिक गतिविधियाँ सीमित हो गयी। उनका कार्य क्षेत्र भी सीमित हो गया। समाज में सती–प्रथा तथा पर्दा प्रथा नहीं थी। वैदिक काल में स्त्री को दो चीजों में अनुपयुक्त माना गया। उसे सम्पत्ति का अधिकार नहीं था। दूसरा वह शासन में भाग नहीं ले सकती थी। इस प्रकार हम देखते है कि इस काल में उसे सम्पत्ति का अधिकाार नहीं था। केवल वही पुत्री सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती थी। जिसके भाई नहीं होता था। अगर कोई पुत्री विवाह नहीं करती थी तो उसे भी पिता की सम्पत्ति में कुछ अंश मिलता था। इस प्रकार हमें वैदिक ग्रन्थों के उल्लेखों से पता चलता है कि वैदिक काल में नारियों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। परिवार में उनकी स्थिति सम्माननीय थी। इसी प्रकार अगर वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति की बात करें तो उन्होंने सभी क्षेत्रों में अपनी पहचान बनायी है।

19 वी शताब्दी में महिलाओं की स्थिति को सुधारने का बीड़ा समाज सुधारकों ने उठाया, उस समय फैली कुरीतियाँ सतीप्रथा, विधवा प्रथा, विधवा पुर्नविवाह, सामाजिक भेदभाव एवं नारी शिक्षा के लिये उन्होंने महत्वपूर्ण कदम उठाये। उनकी दयनीय स्थिति को सुधारने के लिये, राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, ईश्वर चन्द्र विद्या सागर, दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फुले एवं अन्य समाज सुधारकों ने महिलाओं के अधिकारों को दिलाने के लिये आन्दोलन चलाये गये। इन समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के हर सम्भव किया और उनके प्रयासों का ही नतीजा था कि कानून बनाकर 1829 में सती प्रथा को समाप्त किया गया। भारत को आजादी दिलाने में महिलाओं की बड़ी भूमिका रही है।

वर्तमान समय में महिलायें सभी क्षेत्रों में बढ़–चढ़कर अपना स्थान बना

रही है चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो शिक्षा कला, राजनीतिक, प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में अपना परचम लहराया। हमारे संविधान में भी महिलाओं को समानता का अधिकार दिया गया है। सन् 2001 को भारत सरकार ने महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में घोषित किया गया है।

नोबल पुरस्कार से सम्मानित प्रोफेसर अर्मर्त्यसेन ने अपनी पुस्तक इंडिया–इकॉनोमिक डेवलपमेन्ट एण्ड सोशल अपार्च्युनिटी में अपने विचार व्यक्त किये उनका कहना था कि महिला सशक्तीकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा इसके साथ ही इसका फायदा पुरूषों एवं बच्चों को मिलेगा शिक्षित महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होगी बल्कि वह परिवार समाज एवं राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देगी। भारतीय संविधान में 73 वां एवं 74 वां संविधान संशोधन से महिलाओं को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुयी है एवं उनके मनोबल में बृद्धि हुयी है।

बीसवी शताब्दी में महिलाओं ने अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ संगठित एवं असंगठित दोनों ही तरीकों से अपनी आवाज को उठाया यह आन्दोलन महिला शिक्षा, मतदान का अधिकार व पर्दा प्रथा के खिलाफ थे स्वतन्त्रता के बाद उन्होंने सामाजिक मोर्चे पर ध्यान दिया इन आन्दोलनों में दहेज, यौन हिंसा, बलात्कार उत्पीड़न, छेड़–छाड़ के मुद्दे मुख्य थे। सामाजिक कुरीति दहेज विरोधी पहला मोर्चा 1975 में हैदराबाद में गठित किया गया। यह अभियान 1979 में दिल्ली में जोर पकड़ा इस कुप्रथा को दूर करने के लिये नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से प्रदर्शन किया गया।

भारतीय संविधान में महिलाओं के उत्पीड़न को रोकने के लिये बहुत से कानून बनाये गये उनको तोड़ने वालों के लिये कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। भरतीय संविधान में अनुच्छेद 14 में कानून की समानता, अनुच्छेद 15 (3) में जाति धर्म लिंग जन्म स्थान के नाम पर किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जायेगा अनुच्छेद 16 (1) में लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता संविधान के अनुच्छेद 39 घ में पुरूषों एवं स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन का अधिकार प्राप्त है। भारतीय दण्ड संहिता कानून महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिये बनाया गया है ताकि समाज में किसी भी प्रकार की कोई घटना न घट सके। भारतीय दण्ड संहिता कानून से महिलाओं में होने वाले अपराधों जैसे–हत्या, दहेज, भ्रूण हत्या, आत्महत्या हेतु प्रेरित करना, बलात्कार, अपहरण आदि जैसे जघन्य अपराधों को रोकने का प्रावधान है।

इसी प्रकार महिलाओं को घरेलू हिंसा एवं उत्पीड़न से बचाने के लिये सन्

2005 में बना एक अधिनियम है। इस अधिनियम का उद्देश्य महिलाओं को कानूनी सहायता उपलब्ध कराना है ताकि महिलाओं को घरेलू हिंसा एवं उत्पीड़न से बचाया जा सके। यह कानून 2006 में लागू किया गया। घरेलू हिंसा के अन्तर्गत महिला के साथ शारीरिक–दुर्व्यवहार, लैंगिक दुर्व्यवहार या महिला की गरिमा का उल्लंघन, अपमान या तिरस्कार उपहास, गाली देना, आर्थिक दुर्व्यवहार जिसकी वह हकदार से वंचित करना या महिलाओं को मानसिक रूप से परेशान करना ये सभी घरेलू हिंसा कहलाते है। घरेलू हिंसा की धारा–4 के अन्तर्गत घरेलू हिंसा हो चुकी है या होने वाली है इसकी सूचना कोई भी संरक्षण अधिकारी को दे सकता है। धारा–5 के अन्तर्गत यदि घरेलू हिंसा की कोई सूचना किसी पुलिस अधिकारी या संरक्षण अधिकारी या मजिस्ट्रेट को दी गयी है तो उनके द्वारा पीड़िता को जानकारी देनी होगी कि–

1. उसे संरक्षण आदेश पाने का।
2. सेवा प्रदाता की सेवा उपलब्धता।
3. संरक्षण अधिकारी की सेवा उपलब्धता।
4. मुफ्त विधिक सहायता प्राप्त करने का।

धारा–10 के अन्तर्गत सेवा प्रदाता जो नियमतः निबंधित हो वह भी मजिस्ट्रेट या संरक्षण अधिकारी को घरेलू हिंसा की जानकारी दे सकता है। इसी प्रकार से धारा–14, 16, 17, 18, 19, 20, 22 एवं 23, 24 इन सभी धाराओं में धरेलू हिंसा से संरक्षण प्रदान करने के प्रावधान है इनका पालन न करने वालों के लिये कठोर प्रावधान है। अर्थदण्ड के साथ जेल जाने के भी प्रावधान है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि संविधान के कानूनों द्वारा निश्चित रूप से महिलाओं के विकास में बहुत बड़ा योगदान जिनके द्वारा वह निडर होकर निरन्तर प्रगति करती जा रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन मध्यकालीन एवं आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलते है। वर्तमान समय में महिला सशक्तीकरण से महिलाओं ने सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के कारण वह अपने परिवार समाज एवं राष्ट्र निर्माण में विशेष भूमिका के रूप में है। उनका विकास राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही जगह महिलायें निश्चित रूप से राजनीतिक शक्ति बनकर उभर रही है।

महिलाओं के अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता दी गयी है। वर्तमान समय में महिलाओं ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। प्राचीन एवं मध्यकाल की अपेक्षा वर्तमान समय में महिलाओं ने तरक्की की है सभी क्षेत्रों

में स्वतन्त्र रूप से अपने दायित्वों को निभा रही है। उनके बिना विकसित समाज की कल्पना नहीं कर सकते है। ब्रिघमयंग का कहना है कि अगर आप एक आदमी को शिक्षित कर रहे है तो आप सिर्फ एक आदमी को शिक्षित करते है अगर आप एक महिला को शिक्षित कर रहे है तो आप आने वाली पूरी पीढ़ी को शिक्षित कर रहे है। पूर्णतः सत्य है।

सन्दर्भ

1. *के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति संस्करण 2002*
2. *ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास–चतुर्थ संस्करण*
3. *डा0 जयशंकर मिश्रा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*
4- *HindiKiduniya.com*
5- *https:www.èèhi-mwikipedia.org>wiki*
6- *www.webdunia.com*
7. *डा0 सुरेश चन्द्र राजौरा, समकालीन भारत की सामाजिक समस्यायें तृतीय संस्करण–2010*
8. *परीक्षा मंथन–सामाजिक निबन्ध–2006–07*
9. *मनुस्मृति 3.56*
10. *www.dainikbhaskar.com*
11. *अर्थवेद 5, 17, 12, एतरेय ब्राम्हण 7, 3, 13, एतरेय ब्राम्हण 7, 9, 10*
12. *डॉ0 मो0 हनीफ खान शास्त्री, मानवाधिकार (विदों के आलोक में) अरिहन्त प्रकाशन, नई दिल्ली*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-84-93

भगवतीचरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा' का वस्तु विन्यास एवं शिल्प

*डॉ० आजेन्द्र प्रताप सिंह**

'चित्रलेखा' भगवतीचरण वर्मा जी का बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध उपन्यास है। इसका फिल्मांकन भी हो चुका है। इस रचना से ही उपन्यासकार के रूप में आपकी प्रतिष्ठा हुई। भगवतीचरण वर्मा जी ने इस उपन्यास की रचना में अनातोले फ्रांस की रचना 'थाया' (ताइस या छाया) से संकेत और दिशा ग्रहण की है। पाप और पुण्य की परम्परागत धारणाएँ आज अपना महत्व खो बैठी हैं। वर्मा जी का मानना है कि मनुष्य की परिस्थितियों के अध्ययन से ही उसके आचरण की अच्छाई और बुराई का सही पता चलता है।

'चित्रलेखा' उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आँचल पकड़ कर एक रोमानी वातावरण के अंतर्गत वर्तमान का चित्रण किया है। इसका कथानक पूर्व–निश्चित होने के कारण सुसंगठित है। इसमें प्रासंगिक घटनाएँ अथवा कथाएँ अधिक नहीं है, पर नाटकीय घटनाओं की बहुलता इसमें अवश्य है। यह एक सोद्देश्य उपन्यास है। इसके प्रथम भाग में 'पाप–पुण्य' की समस्या उठायी गयी है और अन्तिम भाग में इसका निष्कर्ष दिया गया है। प्रेम के क्षेत्र में वर्मा जी ने इस उपन्यास द्वारा एक नवीन मान्यता की स्थापना कर व्यक्ति स्वातन्त्र्य की माँग की है और बीजगुप्त के माध्यम से स्वच्छन्द प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। इसमें उन्होंने जहाँ कर्म पर विशेष बल दिया है, वहाँ उन्होंने भोग के प्रति भी अपार आस्था प्रकट की है, परन्तु उनका भोगवाद चार्वाक का भोगवाद नहीं है। चार्वाक जीवन के भौतिक सुखों पर ही बल देते हैं। उनके भोगवाद में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। वर्मा जी का भोगवाद नैतिकता पर आधारित है। अपने इस जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अधिक पात्रों की कल्पना नहीं की है। बीजगुप्त, कुमारगिरि और चित्रलेखा, ये ही उपन्यास के तीन प्रमुख पात्र हैं। बीजगुप्त कुण्ठारहित एक स्वस्थ पात्र है। प्रेम और मानवता के क्षेत्र में वह अपने विशाल हृदय का परिचय देता है, परन्तु कुमारगिरि एक कुण्ठा ग्रस्त पात्र है इसीलिए इसका पतन होता है। चित्रलेखा एक ऐसी नारी पात्र है जिसके चारो ओर उपन्यास की घटनाएँ और उसके सारे पात्र चक्रमण करते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास में उसका व्यक्तित्व सबसे अनूठा विचित्र, भव्य और प्रभावशाली है। उसके माध्यम से भगवतीचरण

**असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, फ़ीरोज़ गाँधी कालेज रायबरेली (उ०प्र०)*

वर्मा जी ने नारी, मनोविज्ञान की सफल अभिव्यक्ति की है। संवाद–योजना की दृष्टि से भी वे एक सफल उपन्यासकार है। इनके संवाद तर्क–प्रधान सोद्देश्य और चरित्र–प्रकाशन में सहायक है अतः हम यह कह सकते हैं कि 'चित्रलेखा' एक सफल रोमांटिक चरित्र–प्रधान उपन्यास है।

'चित्रलेखा' की कथावस्तु :– 'चित्रलेखा' का कथानक लगभग समान आकार के बाइस परिच्छेदों में विभक्त किया गया है तथा प्रारम्भ और अंत में 'उपक्रमणिका' और 'उपसंहार' के भाग हैं। 'उपक्रमणिका' में समस्या का उपस्थापन किया गया है तथा 'उपसंहार' में समस्या का समाधान किया गया है। "उपन्यास को उपस्थित करने की शैली नीतिकथा शैली है। बड़ी ही योजनाबद्ध पद्धति के साथ बीजगुप्त और कुमारगिरि से सम्बद्ध कथानकों को क्रमशः उपस्थित किया गया है। उपन्यास में नाटकीयता का समावेश भी हुआ है। चित्रलेखा का कुमारगिरि के आश्रम में पहुँचना इसी प्रकार का है।" [1] कुमारगिरि एकांत में प्रकट रूप से ज्यों ही यह कहता है – "नर्तकी, तुमने मुझसे पराजय स्वीकार की–यह क्यों?" त्यों ही चित्रलेखा का यह कहते हुए प्रवेश होता है कि – "इसलिए कि मैं तुमसे पराजित हुई।" इसी प्रकार उपन्यास का अंत भी नाटकीय व रोमांटिक ढंग से होता है। अंत में बीजगुप्त चित्रलेखा को चूमते हुए कहता है – "हम दोनों कितने सुखी हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि – कथानक में कहीं भी अनावश्यक विस्तार नहीं है। चित्रलेखा उपन्यास की मूलकथा इस प्रकार है – चित्रलेखा पाटलिपुत्र की अद्वितीय सुन्दरी नर्तकी है, पर चित्रलेखा संयम का जीवन बिताती है। वह सबकी प्रणय–याचना ठुकरा देती है। युवक सामन्त बीजगुप्त ही उसे प्रभावित कर पाता है। वह उस सर्वसुन्दर सामन्त के रूप–गुण पर मुग्ध हो उससे प्रेम करने लगती है। बीजगुप्त नर्तकी चित्रलेखा से एकनिष्ठ प्रेम करता है। बीजगुप्त ऐश्वर्यवान् है, भोगी है, अनुरागी है। स्वर्ग या ईश्वर की वह नहीं सोचता, उसके सामने तो इसी दुनिया का वैभव है, सुख विलास है। चित्रलेखा उसके केलि–भवन की एकमात्र साम्राज्ञी बन जाती है। सामाजिक बन्धनों के कारण विवाहिता न हो सकने पर भी बीजगुप्त उसे विवाहिता पत्नी के समान समझता है। चित्रलेखा बीजगुप्त की सर्वस्व है। महात्मा रत्नाम्बर के शिष्य श्वेतांक के मन में प्रश्न उठता है – पाप क्या है, उसकी स्थिति कहाँ है? गुरु पाप और पुण्य की परिभाषा खोजने के लिए अपने दो शिष्यों श्वेतांक और विशालदेव को अथाह संसार में छोड़ देते हैं। श्वेतांक को सामन्त बीजगुप्त की सेवा में छोड़ा जाता है और विशालदेव महायोगी कुमारगिरि का शिष्यत्व ग्रहण करता है। कुमारगिरि बीजगुप्त का विलोम है। बीजगुप्त भोगी है, कुमारगिरि योगी है। संयम

कुमारगिरि का साधन है और स्वर्ग लक्ष्य।

चित्रलेखा नामक उपन्यास में केवल आनन्द की सिद्धावस्था के काम सम्बन्धों पर ही पाप–पुण्य की दृष्टि से विचार किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि पाप–पुण्य का एकमेव क्षेत्र काम सम्बन्धित है।

मनुष्य के जीवन में काम का स्वरूप विचित्र है। उसके सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित रही है कि उपभोग के द्वारा काम को शान्त नहीं किया जा सकता। काम का उपभोग घी की आहुति की तरह कामाग्नि को और भी अधिक भड़का देता है, इसीलिए काम के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही यह धारणा रही है कि जिस प्यास को बुझाया नहीं जा सकता, उसे बुझाने के प्रयत्न में जीवन को क्यों बर्बाद किया जाए। क्यों न, सच्चे परलोक सुख को पाने के लिए साधना की जाए। कुमारगिरि इस मत का समर्थक है। उसकी दृष्टि में 'वासना पाप' है क्योंकि वासना के कारण ही मनुष्य पाप करता है। वासना के होते हुए ममत्व प्रधान रहता है।[2] "कुमारगिरि ने जनक बनने की अपेक्षा श्रृंगी ऋषि बनना चाहा और जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विरोध करने का फल उसे भुगतना पड़ा। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ अस्वाभाविक रीति से दबा दी जाने पर विकृत रूप से फूटकर बाहर आ जाती है, इसीलिए कुमारगिरि वासना को दबाकर ममत्वहीन बनना चाहते हुए भी ममत्व का बुरी तरह से शिकार हो जाता है। उसकी सारी साधना एक तरह से ममत्व की दासता बनकर रह जाती है।"[3] उसकी ममत्व के विस्मरण की बात निस्सार सिद्ध होती है, इसीलिए चित्रलेखा कहती है – "वासना के कीड़े,.....तुम अपने लिए जीवित हो–ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है।"[4]

महाप्रभु रत्नाम्बर की यह बात बिल्कुल सत्य है – "मनुष्य में ममत्व प्रधान है।" –किन्तु यह बात भी, उतनी ही सत्य है कि ममत्व का दूसरों तक विस्तार करके मनुष्य ने अपने को पशु स्तर से ऊपर उठाया है। ममत्व के विस्तार की क्षमता ने ही मनुष्य को 'मनुष्य बनाया है। मनुष्य के विविध सम्बन्धों में ममत्व–विस्तार का ही विशेष महत्व है। मनुष्य के इन विविध सम्बन्धों में काम सम्बन्ध का स्थान अत्यन्त महत्व का है। काम भावना की स्वस्थ पूर्ति भिन्नलिंगी सहयोगी के अभाव में असम्भव है। आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है किन्तु भिन्नलिंगी व्यक्तियों का काम सम्बन्ध कई व्यक्तियों के साथ सम्भव होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से अव्यावहारिक हो जाता है। इसका पहला कारण तो यह है कि किसी व्यक्ति के साथ एक साथ व्यक्तियों का सम्बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए कामसम्भव के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता आ जाती है।

विवाह के द्वारा स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाकर संघर्ष को

दूर कने का प्रयत्न किया गया है। स्त्री–पुरुष के काम सम्बन्ध की एक अन्य विशेषता यह भी है कि यह सम्बन्ध केवल दो व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं होता, अपितु इसके माध्यम से तीसरे व्यक्ति का भी जन्म हो जाता है जिसका उत्तरदायित्व निभाने का कार्य काम सम्बन्ध की तरह क्षणिक न होकर दीर्घकालीन हो जाता है। इस दृष्टि से भी वैवाहिक सम्बन्ध की स्थिरता एवं सामाजिकता महत्वपूर्ण है। मृत्युंजय ने इसी दृष्टि से बीजगुप्त से कहा है – 'विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है.....। चित्रलेखा की सन्तान बीजगुप्त की सन्तान न होगी और न वह सन्तान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी ही हो सकती है।" इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध के औचित्य पर बीजगुप्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। "तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्वाभाविक जातिभेद या उच्च–नीच के भेदभाव के विरुद्ध बीजगुप्त ने कभी विचार ही नहीं किया था वह तो केवल इतना ही जानता था कि उसके प्रेम की अधिकारिणी स्त्री चित्रलेखा के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकती। चित्रलेखा से शास्त्रानुसार विवाहित न होने पर भी वह अपने और चित्रलेखा के सम्बन्ध को पति–पत्नी के सम्बन्ध के समान ही मानता था।"[5]

चित्रलेखा के कुमारगिरि के पास जाने के बाद भी बीजगुप्त यशोधरा से विवाह करने में संकोच करता है। उसे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह विवाह के बाद भी यशोधरा से प्रेम कर सकेगा या नही? तात्कालिक उद्विग्नता के प्रभाव से यशोधरा से विवाह करके यशोधरा के जीवन को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह का साधन मात्र बनाने की उसकी इच्छा नहीं थी। इसके अतिरिक्त यशोधरा से उसका विवाह करना इसलिए भी अनुचित था कि यशोधरा श्वेतांक को चाहने लगी थी। उसने श्वेतांक से यह स्पष्टतः कह दिया था कि – "मैं आर्य बीजगुप्त से प्रेम नहीं करती।"

"काम सम्बन्ध की दृष्टि से एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि असमय का विराग जीवन की भूल है। यह भूल कुमारगिरि ने की है। इसके विपरीत बीजगुप्त ने जीवन की प्रवृत्तियों का भोग सहजता के साथ किया है, इसलिए वह सहजता से उन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित पशुता को त्याग सका है। वह श्वेतांक से कहता है – "मैने इस वैभव को काफी भोगा है अब चित्त फिर गया है।" बीजगुप्त उन व्यक्तियों में से नहीं है जो केवल अपने लिए जीते हैं। केवल अपने लिए जीने वालों की पशुता से वह मुक्त है। वह अपने वैभव को दान में देकर यह सिद्ध करता है कि वह उस स्थिति को भी पार कर चुका है जिसमें कोई व्यक्ति अपने साथ दूसरों के लिए भी जीता है। वह दूसरों के लिए निजी स्वार्थ का परित्याग करके देवत्व को प्राप्त कर लेता है। वैभव का परित्याग करके अकिंचन बन जाने के बाद भी वह चित्रलेखा के प्रेम को भुला नहीं सका है।"[6]

महाप्रभु रत्नाम्बर ने श्वेतांक और विशालदेव को पाप का पता लगाने के लिए बीजगुप्त और कुमारगिरि के पास रखा था इतना ही नहीं पाप और पुण्य को पहचानने की कसौटी की और श्वेतांक का स्थान भी आकृष्ट करते हुए कथा था – "अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।" अपने अनुभव के काल में श्वेतांक परिस्थितिवश अपनी स्वामिनी से प्रेम कर बैठा। यदि उसे अपराध भी मान लिया जाये, तो उसने जिसके प्रति अपराध किया या उससे अपना अपराध कह कर अपने अपराध को धो दिया था। "प्रस्तुत उपन्यास में काम सम्बन्ध विषयक जिस दृष्टिकोण वैविध्य को लेखन ने प्रस्तुत किया है उसे उपस्थित करते हुए उन्होंने चित्रलेखा को माध्यम बनाया है और इसीलिए उपन्यास का नामकरण भी उन्होने 'चित्रलेखा' किया है।"[7]

'चित्रलेखा' का चारित्रिक विन्यास :– चारित्रिक विन्यास की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यन्त सफल है। इस उपन्यास का सबसे अधिक सफल चरित्र चित्रलेखा का है और इसीलिए उसी के नाम पर उपन्यास का नामकरण भी किया गया है। चित्रलेखा के माध्यम से प्रेम विषयक विविध दृष्टिकोणों को लेखक ने उपस्थित किया है। चित्रलेखा विधवा ब्राह्मणी थी। वह अट्ठारह वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई थी। उसने पति के ईश्वरीय प्रेम में आत्म बलिदान के सुख का अनुभव किया था। पति की मृत्यु के बाद उसने वैधव्य के संयमपूर्ण जीवन को अपनाया, किन्तु सब ओर से विरक्त बना कर जीवन के अनुराग को केन्द्रित करने वाली सत्ता के अभाव में संयम का नियम टिक न सका। सुन्दर नवयुवक कृष्णादित्य ने उसकी तपस्या भंग कर दी। चित्रलेखा के जीवन का अनुराग कृष्णादित्य में केन्द्रित हो गया। इस बार अनुराग का रूप आत्म बलिदान का नहीं, अपितु पारस्परिकता का था, जिसमें आत्म विस्मरण के साथ–साथ पिपासा भी थी। कृष्णादित्य के जीवन में से चले जाने के बाद उसे एक नर्तकी ने आश्रय दिया, और वहाँ रहते हुए वह नर्तकी बन गई। रमाकान्त श्रीवास्तव जी ने लिखा है कि – "हिन्दी उपन्यास साहित्य में नियतिवाद को अपने लेखन का केन्द्र–बिन्दु भगवतीचरण वर्मा ने बनाया।"[8]

"चित्रलेखा का सौन्दर्य अप्रतिम था, जो कोई उसे एक बार देख लेता था, उसके मन में उसे पुनः पुनः देखने की अमिट साध उत्पन्न हो जाती थी। यही साध पाटलिपुत्र के सबसे सुन्दर युवक सामंत बीजगुप्त में पैदा हुई। चित्रलेखा भी बीजगुप्त को देखकर स्तब्ध रह गई। वह साक्षात् कृष्णादित्य का प्रतिरूप था। चित्रलेखा ने फिर से अपने जीवन में किसी व्यक्ति के न आने देने का निष्चय किया किन्तु अधिक दिनों तक बीजगुप्त की कृत्रिम रूप से उपेक्षा न कर

सकी।"[9] कहने का आशय यह है कि नगर की 'पवित्र नर्तकी' बीजगुप्त की हो गई। बीजगुप्त की होकर भी वह अपवित्र नहीं हुई। वेश्या नहीं बनी।

चित्रलेखा ने कभी यह सोचा भी न था कि बीजगुप्त के रहते हुए कोई अन्य व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है। चित्रलेखा कुमारगिरि की कुटिया में अतिथि के रूप में पहुँची और अनजाने ही उसके सौन्दर्य से प्रभावित हो उठी। दूसरी ओर कुमारगिरि ने चित्रलेखा के सौन्दर्य में वासना की मस्ती का अहंकार तो देखा ही, किन्तु स्त्री को अंधकार समझने वाले कुमारगिरि ने यह भी देखा कि चित्रलेखा सुन्दरी होने के साथ विदुषी भी है वह उस नर्तकी के ज्ञान से सहमत न होते हुए भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। चित्रलेखा के हृदय में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का क्षीण आभास बीजगुप्त ने पा लिया था। चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा देते हुए यह कहा – "प्रियतम, कुमारगिरि योगी है और मूर्ख है।" परन्तु चित्रलेखा स्वयं को धोखा न दे सकी। चन्द्रगुप्त के दरबार में कुमारगिरि की ओर आकृष्ट हो गई।" कुमारगिरि चित्रलेखा को साधना के मार्ग में दीक्षित न कर सके। चित्रलेखा को दीक्षित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उसक व्यक्तित्व कुमारगिरि के व्यक्तित्व से किसी भी प्रकार नीचा न था। कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होने पर चित्रलेखा को अपने मन को धोखा देने के लिए आदर्श के कवच की आवश्यकता महसूस हुई। बीजगुप्त के रहते हुए कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होने में जो अनैतिकता का दशा चित्रलेखा के मन में कसक रहा था, उसे दूर करने के लिए मृत्युंजय के घर में उसे बहाना मिल गया। उसने अपने मन को बहलाया कि प्रेम का सच्चा स्वरूप त्याग में ही निखरता है और बीजगुप्त को विवाहित देखने के लिए वह बीजगुप्त से शारीरिक सम्बन्ध मात्र तोड़ रही है, प्रेम के आत्मिक सम्बन्ध को नहीं। दूसरी ओर वह कुमारगिरि को भी धोखा देते हुए कहती है – "आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है।" [10] चित्रलेखा ने वासना के आवेश में पशुता से प्रेरित होकर बीजगुप्त को छोड़ तो दिया किन्तु कुमारगिरि की कुटी में पहुँचने के बाद उसने यह अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रेम नहीं कर सकती और बीजगुप्त को भुला नहीं सकती। बीजगुप्त से विवाहित होने के समाचार से वह अवसन्न हो उठी। अवसाद की जड़ता में वह कुमारगिरि की वासना का शिकार बनने के बाद भी वह बीजगुप्त के सम्बन्ध में जानने के लिए व्याकुल बनी रही। बीजगुप्त के अविवाहित रहने का समाचार पाकर वह पश्चाताप की अग्नि में झुलस उठी। पश्चाताप में वह जितना ही रोती, उतना ही उसे संतोष मिलता था। बीजगुप्त के अकिंचन होकर नगर से निकलने पर वह भी अकिंचन बनकर निकल पड़ी। बीजगुप्त ने भी उसे अपनाते हुए कहा – "प्रेम के प्रांगण में कोई

अपराध ही नहीं होता।" चित्रलेखा और बीजगुप्त के जीवन का 'प्रेम और केवल प्रेम' ही आधार और ध्येय बना।

बीजगुप्त दृष्टि में उसका और चित्रलेखा का प्रेम सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध है इसलिए उन्माद की क्षणिकता से मुक्त है। परिणामतः वह स्पष्ट रूप से कहता है – "मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।" [11]

प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वह कहता है – "जीवन में आवश्यक है एक दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना–एक दूसरे से प्रगाढ़ सहानुभूति और एक–दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना ही प्रेम है, जीवन का सर्व सुन्दर लक्ष्य है।" [12] वह अपनी ओर से इस लक्ष्य के प्रति पूर्णतः समर्पित है। अपनी प्रेयसी के कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट होने का आभास पाकर वह दुखी हो जाता है। बीजगुप्त की हित कामना की दृष्टि से चित्रलेखा के त्याग को जानकर उसे अपने चित्रलेखा विषयक अविश्वास पर ग्लानि होती है। चित्रलेखा के छोड़कर चले जाने के बाद भी केवल शारीरिक सम्बन्ध के लिए यशोधरा से विवाह करने के लिए उद्यत नहीं होता। उसकी दृष्टि में विवाह और प्रेम का गहरा सम्बन्ध है।

प्रस्तुत उपन्यास का तीसरा महत्वपूर्ण चरित्र कुमारगिरि है। कुमारगिरि योगी है उसकी दृष्टि में वासना पाप होने के कारण त्याज्य है। संयम–नियम से इस पाप से बचा जा सकता है, ऐसा उसका विश्वास ही नहीं अपितु वह वासनाओं पर विजय पा लेने का दावा भी करता है। इसी दावे के अहंकार के कारण वह विशालदेव से कहता है – "मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखा दूंगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे।" (चित्रलेखा) स्वयं वर्मा जी मानते हैं कि – "मेरी चित्रलेखा और अनातोले फ्रांस की 'ताइस' में इतना अंतर है जितना मुझमें और अनातोले फ्रांस में।" [13]

वासना पर विजय पाने का दावा करने वाला यह योगी स्त्री को दीक्षा देने में संकोच करने लगता है। चित्रलेखा के सम्पर्क में उसका हृदय 'साकार' की पुकार मचाने लगता है उसकी सारी आत्मशक्ति धरी की धरी रह जाती है। आत्मशक्ति के सहारे सत्य का साक्षात्कार कराने की क्षमता प्रदर्शित करने वाला यह योगी असत्य के सहारे चित्रलेखा के शरीर को अपनी वासना का शिकार बना लेता है। असत्य का भंडा होने पर चित्रलेखा उससे कहती है – "नीच और झूठे पशु! .....वासना के कीड़े! तुम क्या जानो? तुम अपने लिए जीवित हो–ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है।"

"चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि के अतिरिक्त श्वेतांक और विशालदेव

को भुलाया नहीं जा सकता। ये ही वे दो पात्र हैं जो संसार में पाप का स्वरूप जानने के लिए निकल पड़े हैं। श्वेतांक यथा नाम तथा गुण पात्र है। उसका हृदय संसार की कालिमा से मुक्त अबोध बालक की श्वेतता लिए हुए है। बीजगुप्त के सेवक और गुरुभाई के नाते रहते हुए उसने चित्रलेखा के सम्पर्क में प्रथमतः अज्ञात चाह के कम्पन का अनुभव किया। चित्रलेखा के आकर्षण से आविष्ट होकर उसे यहाँ तक अनुभव हुआ कि मानों उसका चित्रलेखा से पारलौकिक सम्बन्ध है। चित्रलेखा के यौवन की मादकता का शिकार बन वह उसके हाथ की मदिरा को अस्वीकार न कर सका। श्वेतांक ने यह पाप उस दशा में किया है, जबकि चित्रलेखा ने उसे स्पष्टतः यह कह रखा था कि "तुम्हारे जीवन में मेरा आना असम्भव है।"[14] इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त रत्नांबर, चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि कुछ अन्य गौण पात्र भी हैं। इन गौण पात्रों में कुमारगिरि के शिष्य मधुपाल का क्षण भर के लिए आना और फिर सदा के लिए लापता हो जाना विशेष रूप से खटकता है। चाणक्य के तर्क कर्कश सशक्त व्यक्तित्व की झाँकी देने में लेखक भगवतीचरण वर्मा सफल रहे हैं।

'चित्रलेखा' का देशकाल एवं परिस्थिति :– देशकाल की दृष्टि से चित्रलेखा उपन्यास पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। इसका उद्देश्य मौर्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डालना नहीं है, अपितु यह पाप–पुण्य की समस्या को विशिष्ट कोण से उजागर करने वाला उपन्यास है। समस्या प्रधान उपन्यास होने के कारण देशकाल को इसमें गौण रूप से ही स्थान मिला है। इसका देश मुख्यतः पाटलिपुत्र नगर है और पाटलिपुत्र नगर में भी बीजगुप्त एवं कुमारगिरि के निवास स्थान वर्णित हुए हैं। अल्पकाल के लिए पाटलिपुत्र से काशी की यात्रा का भी प्रसंग चित्रित हुआ है।

"चित्रलेखा उपन्यास की कहानी केवल एक वर्ष की कहानी है यदि कथा से सम्बन्धित दिनों की गिनती करनी हो तो यह कहा जा सकता है कि उपक्रमणिका और उपसंहार के दिनों को छोड़कर यह केवल इक्कीस दिनों की कहानी है। यह इक्कीस दिन वर्ष के अंतर्गत फैले हुए हैं। विशेषतः ये दिन मधुमास व ग्रीष्म के दिन हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त की अपेक्षा सूर्यास्त से सूर्योदय के काल को ही अधिक अपनाया गया है। केवल तीन चार परिच्छेदों में ही रात्रि का वर्णन नहीं है। रात्रि में भी अर्द्धरात्रि के समय का मोह लेखक को विशेष है।" [15]

'चित्रलेखा' की भाषा–शैली :– शैली की दृष्टि से उपन्यास की कुछ विशेषताओं की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है। उपन्यास के कथानक की योजना में तुलनात्मकता पर विशेष बल स्वाभाविक ही है। बीजगुप्त और कुमारगिरि की तुलना उपन्यास में सबसे अधिक है। इनके अतिरिक्त स्थान–स्थान

पर यशोधरा और चित्रलेखा, यशोधरा और मृत्युंजय, चित्रलेखा और कुमारगिरि आदि की भी तुलना की गई है। यशोधरा और चित्रलेखा की तुलना करते हुए लेखक ने कहा है – "एक शांति थी दूसरी उन्माद।" एक अन्य स्थल पर इनकी तुलना कुमारगिरि अपने मन में करते हुए सोचता है – "चित्रलेखा की मादकता भयानक थी। उसका नृत्य उसकी सजीवता की प्रतिमूर्ति, पर साथ ही यशोधरा की शांति अथाह सिंधु की भाँति थी, जिसमे पड़ कर मनुष्य अपने को भूल जाता है।"[16] लेखक ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के सहारे ऐतिहासिकता का आभास पैदा करने का प्रयत्न किया है। 'देवि', 'वत्स', 'स्वामिन्' आदि सम्बोधन इसी प्रकार के हैं। 'पाटलिपुत्र', 'विश्वपति' आदि व्यक्तिवाचक नाम ऐतिहासिकता के आग्रह के कारण ही दिए गए हैं। कहीं–कहीं नामकरण में अशुद्धियाँ भी हैं। विश्वपति का निवास स्थान 'कौशल प्रदेश' है। वस्तुतः कोशल नाम अधिक ठीक है। इसी प्रकार बीजगुप्त ने 'हिन्दूकुश' पर्वत देखने का उल्लेख किया है। 'हिन्दूकुश' नाम परवर्ती काल में प्रचलित हुआ है। प्रकृति वर्णन के प्रसंग उपन्यास में अत्यल्प हैं, किन्तु जो थोड़े से प्रसंग हैं वे अत्यंत सुंदर रूप में वर्णित हैं जैसे – "सौरभ से भरा मधुमास था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुस्करा रही थी।" [17] भाषा और शैली की दृष्टि से 'चित्रलेखा' एक सफल रचना है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवतीचरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा' हिन्दी की एक नई विचारोत्तेजक रचना है जिसमें परम्परागत जीवन–मूल्यों को चुनौती दी गयी है। भगवतीचरण वर्मा की छायावादी भावुक कवि–प्रवृत्ति भी इस उपन्यास में खुब सजग है। उपन्यास में कथावस्तु, चरित्र–चित्रण, भाव–प्रवणता, ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता रोचक संवाद–शैली, काव्यात्मक सुन्दर भाषा–शैली, उद्देश्य की महान सिद्धि आदि सभी तत्त्वों का सुन्दर सामंजस्य है। संक्षिप्त किन्तु उत्कृष्ट कथा भी है और मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण भी। ऐतिहासिक वातावरण के होते हुए भी रचना आधुनिक विचार–संदर्भ लिये हुए है। प्रेम के उदात्त रूप का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। रचना श्रृंगार रस प्रधान है। चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि–इन तीनों प्रमुख पात्रों का बड़ा ही सजीव मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण हुआ है। वैयक्तिक, सीमा में होते हुए भी उपन्यास की थीम सामाजिक है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'चित्रलेखा' भगवतीचरण वर्मा का एक श्रेष्ठ उपन्यास है और भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में हैं। "इनके सम्पूर्ण साहित्य में व्यक्तिवादी और नियतिवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं।" [18] और "चित्रलेखा में प्रतिपादित नियतिवादी भारतीय विचारधारा है।" [19] निश्चित ही चित्रलेखा वर्मा जी की बहुचर्चित रचना है। "इस उपन्यास में ही उन्हें सफलता व प्रसिद्धि दिलाकर

विश्वविख्यात, सफल व श्रेष्ठ उपन्यासकार के पद पर प्रतिष्ठित किया।" [20]

सन्दर्भ

1. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु ,सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 34*
2. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा, ग्यारहवाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन 2019 पृ. 21*
3. *हिन्दी उपन्यास विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 30*
4. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन 2019 पृ. 176*
5. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 31*
6. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 32*
7. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पुस्तक संस्थान कानपुर पृ. 34*
8. *उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ.सं. 53*
9. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 35*
10. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन 2019 पृ. 116*
11. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 38*
12. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन 2019 पृ. 110*
13. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा, भूमिका से*
14. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने,ुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 40*
15. *हिन्दी उपन्यास के विविध आयाम : सं. डॉ. चन्द्रभानु सोनवने,ुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 42*
16. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा,ुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 82*
17. *चित्रलेखा : भगवतीचरण वर्मा,ुस्तक संस्थान, कानपुर पृ. 50*
18. *व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव, प्राक्कथन से*
19. *व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव, पृ. 112*
20. *भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन : डॉ. अंधारे अशोक विश्वनाथ, पृ. 37*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-94-99

वाल्मीकीय रामायण में वर्णित पर्यावरणीय चेतना

डॉ० श्री भानु मिश्र

पर्यावरण के साथ भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध आदिकाल से ही अविछिन्न रहा है। सैन्धव संस्कृति के अन्तर्गत् प्रकृति के विभिन्न घटकों की पूजा उपासना के साक्ष्य यथा उर्वराशक्ति की उपासना, वृक्षपूजा, जलपूजा इत्यादि तत्युगीन पर्यावरणीय चेतना के द्योतक हैं।

हम चतुर्दिक जिन दशाओं अथवा वातावरण से घिरे हुए हैं, वही पर्यावरण है। पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है, इसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती[1]सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण पंच महाभूतों से हुआ है, इन सबका मिश्रित रूप ही पर्यावरण है। व्यापक अर्थों में जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैवीय परिस्थितियों का योग ही पर्यावरण है। इसे जीवमंडल भी कहा गया है, जो जल–स्थल और वायु के भागों का योग है। सम्पूर्ण जैव मंडल का नियमन एवं सम्मान ही इसकी सुरक्षा व संरक्षण है।[2] आर्ष ऋषिगण सदैव पर्यावरण के प्रति सचेष्ट रहे। चारों वेदों में अग्नि, वायु, पृथ्वी, एवं जल तत्व के क्रमिक गुणधर्म वर्णित हैं जबकि आकाश तत्व का सभी वेदों में वर्णन मिलता है। प्रथमतः आकाश का अस्तित्व तत्पश्चात् जल, फिर वायु और तीनों के समन्वय से अग्नि, पुनः चारों तत्वों से पृथ्वी की सृष्टि हुई। इस प्रकार सृष्टि और प्रकृति के जन्मदाता पंच तत्वों को ही माना गया है।[3]

नदीसूक्त में जल की महत्ता तथा पृथ्वीसूक्त के प्रमाण प्रकृति की उपासना के उदात्त द्योतक है। अथर्ववेद पर्यावरण के अत्यधिक सन्निकट है जिसमें प्रकृति को विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशिनी, के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[4] इस प्रकार वैदिक बाङ्मय, उपनिषद, स्मृति, पुराणादि ग्रन्थों में पर्यावरणीय सजगता के प्रचुरशः उल्लेख मिलते है।

वाल्मीकीय रामायण में भी पर्यावरणीय चेतना के अनेकानेक संकेत प्राप्त होते है। रामायण महाकाव्य का साहित्यिक, सांस्कृतिक के साथ ही राष्ट्रीय दृष्टि से भी महत्व अक्षुण्ण है, क्योंकि आर्ष कवि ने स्वयं ही मानवता के उत्कृष्ट एवं उदात्त मूल्यों का परिशीलन एवं प्रत्यक्षीकरण किया था।[5]

जिस प्रकार मनुष्य के शारीरिक विकास हेतु वाह्य पर्यावरण की अनुकूलता

**प्राचार्य पं०रामेश्वर बाजपेई स्मृति महाविद्यालय मंशीगंज रायबरेली (उ०प्र०)।*

नितांत अपेक्षित हैं, उसी प्रकार व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में आंतरिक पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। आदि कवि वाल्मीकि की विराट दृष्टि भी पर्यावरण के प्रति उदासीन नहीं थी जैसा कि उनके द्वारा चित्रित समाज और संस्कृति से स्पष्ट होता है।

रामायण युगीन समाज के सदस्य स्व– कर्तव्य धर्म के सम्यक निर्वाहक थे और उनमें किसी भी प्रकार की हीन भावना नहीं थी।6 रामायण में चारों वर्ण लोभ विवर्जिताः कहे गये हैं जो आर्यत्व को सार्थक करते थे।7

वस्तुतः तत्कालीन सामाजिक पर्यावरण में 'कृतेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया' की उक्ति चरितार्थ होती है।[8] इसके अतिरिक्त उस युग में पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली अनार्य, क्रूरकर्मा राक्षसादि जातियों का भी अस्तित्व था। इसके साथ ही कतिपय पर्यावरण के सन्निकटस्थ वानर, किरात, शबर, गृधादि अन्यान्य जातियाँ भी महत्वपूर्ण थी जो प्रायः अरण्य, नदी, पार्वत्य प्रदेशों में रहती थी। सुख समृद्धि वैभव, ज्ञान–विज्ञान कला आदि की दृष्टि से तत्कालीन सभी जातियाँ अत्यन्त विकसित अवस्था को प्राप्त थीं।

उत्तर से लेकर दक्षिण तक आर्य–संस्कृति के व्यापक प्रचार प्रसार हेतु राम, अगस्त्य, हनुमान तथा विभीषण आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। नारी का जीवन उस युग में त्याग तपोमय, व समर्पित भावना से परिपूर्ण था।[9] उस समय के समुन्नत शैक्षिक परिवेश में माता–पिता एवं आचार्य का पर्याप्त प्रतिष्ठित स्थान था। विविध विषयों की शिक्षा के साथ ही धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का स्थान सर्वोपरि था जिससे अन्तःपर्यावरणीय उत्कृष्ट अवस्था का भान होता है।[10]

मानव का आंतरिक पर्यावरण बड़ा ही उत्कृष्ट और संतुलित प्रतीत होता है। मानवीय जीवन मूल्य स्वरूप पुरूषार्थो में आपसी समन्वय स्थापित था।[11] त्रिवर्ग– धर्मार्थकाम के यथोचित पालन से व्यक्ति गृहस्थाश्रम को सार्थक करते हुए त्रि–ऋण से मुक्त होता था। उस समय धर्मसम्मत अर्थोपार्जन व काम के माध्यम से वंशपरंपरा का वर्धन करना श्रेयस्कर समझा गया था।[12]

रामायण में धर्म के वाह्य एवं आन्तरिक द्विविध स्वरूपों का उल्लेख है।[13] आर्ष कवि द्वारा कृतज्ञता, सत्यवादिता, दृढंसकल्प, हिताकांक्षा, तप, दयाभाव, शुचिता, दानशीलता, इन्द्रिय–निग्रह जैसे सद्गुणों का भूरिशः वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर राज्य एवं प्रजावर्ग के सभी लोगों ने अपने नियम निष्ठ आचरणों से तत्कालीन अंतःपर्यावरण को सर्वथा प्रदूषण मुक्त कर रखा था।

रामायण कालीन सम्पूर्ण भारत में ऋषि आश्रमों की अटूट ऋंखला

विद्यमान थी जो भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकता के परम प्रतीक ज्ञान एवं ध्यान के सुंदर केन्द्र थे। पर्यावरणीय महत्व की दृष्टि से तो ये आश्रम उस युग के अद्वितीय निदर्शन कहे जा सकते हैं। आश्रमों से त्याग, तपोमय एवं संयमित जीवन चर्या के माध्यम से समाज को प्रेममय शुद्ध जीवन यापन की प्रेरणा मिलती थी। आध्यात्मिक तेज से ओत प्रोत सुरम्य प्राकृतिक परिवेश मे अवस्थित इन आश्रम मंडलों मे सर्व भूतहितरेताः की ही ध्वनि अनुगुंजित होती थी।[14] यहाँ पर होने वाले यज्ञों, अग्निहोत्र, वेद–पाठादि से तपोधन और तेज की वृद्धि होती थी। इससे न केवल व्यक्ति की अंतः प्रकृति स्वस्थ और संतुलित होती है अपितु वाह्य पर्यावरण भी निखरता है। यज्ञ धूम से पर्जन्य निर्माण और वृद्धि होती है जो सर्व जीवनोपयोगी है।[15] वस्तुतः स्वस्थ और सुंगधित वातावरण से पर्यावरण विविध प्रदूषणों से मुक्त होकर पवित्र और संतुलित हो जाता है।

राम के लिए चित्रकूट पर्वत का दर्शन और मंदाकिनी का सानिध्य अयोध्या में रहने से भी कहीं अधिक सुखप्रद था। राम द्वारा सेवित यह स्थल वृक्ष लताओं तथा फल मूलादि आजीविका के साधनों से युक्त और दावानल के भय से मुक्त था।[16] किसी नदी या जलाशय तथा वृक्षों से सुशोभित रमणीय तट आश्रमों के लिए उपयुक्त होता था। स्थान की स्वच्छता का विशेष आग्रह रखा जाता था।[17] कालांतर में राम ने चित्रकूट में रहना इसलिए छोड़ दिया क्योंकि भरत की सेना के टिकने के बाद भी वहाँ की भूमि घोड़ों और हाथियों की लीद से अशुद्ध हो गई थी।[18] ऋषि भारद्वाज का प्रयाग स्थित आश्रम आध्यात्मिक सामग्री के साथ लौकिक सुविधाओं हेतु भी उपयुक्त था। आश्रमों में उपयुक्त शिष्टाचार तथा भद्रव्यवहार अपेक्षित था तथा उच्छृंखलता का आचरण सर्वथा त्याज्य था।

महर्षि अगस्त्य का आश्रम परम तेज से परिपूर्ण था। उन्होने श्रीराम को विजय एवं सर्वकल्याण हेतु आदित्य हृदय स्त्रोत के पाठ की सम्मति दी थी जिससे प्रकृति एवं सूर्योपासना का महत्व प्रतिपादित होता है।[19] नगरों और आश्रमों के मध्य कोई पार्थक्य की दीवाल नहीं थी। दोनों ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजग थे। रामायण कालीन कृषि, पशुपालन, तथा विविध उद्योग धन्धे आर्थिक समृद्धि के मूल आधार थे। तत्कालीन समाज भी कृषि वाहुल्य था, शस्य श्यामला धरती पर्यावरणीय शुद्धता का द्योतन करती थी, ''सुक्षेत्रा सस्यमालिनी पृथिवी, तथा जाता महीसस्यवनाभिरामा। वर्षा हेतु यज्ञीय विधान भी पर्यावरण चेतना का संकेतक है।[20] उस समय के सभी जनपद गाँव, हरी भरी धरती से सुशोभित थे। रामायणकालीन भारत में पशु गोपालन के प्रचुरशः वर्णन प्राप्त होते हैं, जो आर्थिक पर्यावरण की समृद्धि में सहायक थे।[21]

'सुविभक्त महापथा' अयोध्यापुरी की गलियों व सड़कों (रथ्या) तथा राजमार्गों को प्रतिदिन स्वच्छ किया जाता था। यही नहीं उन पर जल का छिड़काव कर फूलों को भी विखेरते थे–राजमार्गेणमहता सुविभक्तेन शोभिताः मुक्त पुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः, यह नगरी चतुर्दिक 'उद्यानाम्रवनोपेतां महती सालमेरखलां युक्त थी।[22] रात्रि काल में प्रकाश हेतु दीपवृक्षों की व्यवस्था भी उल्लेखनीय है– प्रकाशीकापणार्थ च निशागमनशंकया दीपवृक्षां स्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्वशः। नंदिग्राम अयोध्या का एक उपनगर था जिसकी सीमा पर कुसुमित वृक्ष सुशोभित थे– आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्राम समीपमान्। [23] मार्गों के दोनों ओर तथा चौराहों (चत्वर) पर आम, तमाल आदि वृक्ष पथिकों हेतु महत्वपूर्ण थे। पर्याप्त खुले स्थान के अतिरिक्त नगरों में खेत भी होते थे जिनके मध्य प्रशस्त मार्गों एवं वृक्ष समूहों से वातावरण रमणीय हो जाता था।

लंका नगरी भी सुव्यवस्थित मार्गों, रथ्याओं, उपरथ्याओं, तथा चर्याओं से युक्त थी जहाँ जल, गिरि और वनदुर्ग तीनों का अद्भुत् सम्मिश्रण था। लंका का केन्द्रीय राजमार्ग हरी दूब, फल–फूलों, सुंगधित वृक्षों से शोभायमान था। [31] तत्कालीन नगरों मे उद्यानों, कलदीगृहों और वृक्षों का बाहुल्य था। प्रत्येक घर के साथ गृहोद्यान (निष्कुट) तथा प्रत्येक महल के साथ 'प्रमदवन की योजना पर्यावरणीय चेतना को मुखर करती है।[24] भारतीय संस्कृति में तो अनेक वृक्षों की पूजा का भी विधान निरूपित है जिनमें अश्वत्थ वट, नीम, अशोक, तुलसी, आम्र तथा विविध औषधियाँ महत्वपूर्ण हैं। रामायण काल में भी यह परम्परा प्रचलित थी। वैद्यराज सुषेण द्वारा लक्ष्मण की प्राण रक्षा हेतु संजीवनी औषधियों का वर्णन मिलता है जिन्हें हनुमान जी द्वारा लाया गया था– 'सौम्य शीघ्रमितोगत्वा पर्वतं हि महोदयम, विशल्यकरणीं नाम्ना, सावर्ण्यकरणीं तथा संजीवकरणीं वीरसंधानी च महौषधीम्।[25]

इसी प्रकार औषधीश हिमालय से प्राप्त अनेक प्रकार की दीप्तिमती औषधियों का वर्णन जाम्बवान द्वारा भी वीर हनुमान से किया गया है। इन प्राणदायिनी औषधियों के नाम हैं:–1.मृत संजीवनी 2.विशल्यकरणी 3.सुवर्णकरणी 4.संधानी।[26]

वह सुन्दर क्षेत्र नाना प्रकार के हिरणों, पक्षियों तथा आम्र, जम्बू, लोध, प्रियाल, पनस, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल, धन्वन (इन्द्रजौ), वज्जिक (अनार), बेल, तिन्दुक, बांस, अरिष्ट (नीम), वरूण, महुआ, बेर, आंवला, कदम्ब आदि घनी छायावाले वृक्षों, फूलों और फलों से लदे होने के कारण अत्यन्त मनोरम प्रतीत होते थे।[27]

कहा जा सकता है कि रामायणकालीन संस्कृति में पर्यावरण की शुद्धता का विशेष ध्यान रखा गया था। वृक्षावलियों से सुशोभित नगरों, मार्गो का जलवायु एवं कलात्मक दृष्टि से बड़ा महत्व था। उद्यान, उपवन, तडाग आदि लोगों को कोलाहल युक्त वातावरण से मुक्त कर प्रकृति के सान्निध्य में रहने का अवसर प्रदान करते थे। चतुष्पथों पर वृक्षारोपण तत्कालीन कलात्मकता के साथ ही पर्यावरणीय चेतना का भी द्योतन करता है। इससे तन और मन दोनों को शांति मिलती है और शीतलता का संचार होता है।[28]

सड़कों पर जल छिड़काव, दीप स्तंभों से प्रकाशित करना तथा सुवासित करने का विधान तत्कालीन पर्यावरण की उपयोगिता के परिचायक हैं।

इसी प्रकार रामायण में कथा प्रसंग के अनुकूल वन स्थली का चित्रण अरण्य–पर्वत्य प्रदेश का सुरम्य वर्णन, दण्डकारण्य, क्रौञ्चवन, मतंगवन, किष्किन्धा की मार्गस्थ वन्य प्रकृति, ऋष्यमूक, महेन्द्र मैनाक, सुवेलादि पर्वतों, पंपादि सरों, पंचवटी और गोदावरी की शोभा, गंगा–यमुना, नर्मदा, सई, गोमती, तमसा, शतद्रु तथा इक्षुमती इत्यादि नदियों, वन्य–वनस्पतियों मृग हस्ति आदि पशुओं एवं विभिन्न शुकसारिकादि पक्षियों, वसन्त वर्षा, हेमन्त आदि ऋतुओं का वर्णन बड़ा ही मार्मिक सरस, चित्रांकन महाकवि द्वारा अनेकत्र किया गया है।[29]

वस्तुतः पृथ्वी पर स्वर्गिक साम्राज्य आर्थिक समृद्धि द्वारा, सौन्दर्य के माध्यम से तथा जनमानस के अंतःकरण से उद्भूत् त्याग की भावना द्वारा सृजित किया जा सकता है। इस दृष्टि से तत्युगीन सांस्कृतिक आदर्श, नैतिक तथा उदात्त मूल्य आधुनिक घोर भौतिकता, छल–छद्म, स्वार्थपरायणता जैसी अनेक कुप्रवृत्तियों से ग्रस्त एवं त्रस्त समाज के लिए नितांत अनुकरणीय एवं उपादेय हैं।

स्पष्टतः कह सकते हैं कि रामायण कालीन समाज, अंतः एवं वाह्य दोनों ही पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करने एवं पुनीत, स्वस्थ तथा सन्तुलित रखने के प्रति सर्वथा सजग व सचेष्ट था। भारतीय संस्कृति एवं रामायण काल में पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण का औचित्य आधुनिक ग्लोबलवार्मिंग के युग में अतीव महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

1. पर्यावरण अध्ययन– रतन जोशी पृ0 1–8, साहित्य भवन पब्लिकेशन–2006 आगरा।

2. ऋग्वेद 8/7/5– नियद्यामाया वो गिरिर्निसिन्धवों बिघर्मणे महे शुष्काय ये भिरे।

3. महाभारत शांति, मोक्षपर्व अ. 183/9–16 गीताप्रेस–गोरखपुर।

4. अथर्व 12/01/1–6 एवं 12/1/12

5. पूजयंश्च पठश्चैनमितिहासं पुरातनम–रामा.6/28/17

6. रामायण 1/13–20, 2/82/32, 2/100!42, 2/105/33
7. वही 6/28/104–105, प्रेम बल्लभ त्रिपाठी–पुरुषार्थचतुष्टय, प्र0 45–48
8. महाभारत उद्योगपर्व 40–53
9. महाभारत 5/35/11–22, 2/37/32, 5/55/28
10. वही 1/6/2–13, 2/32/7, 92, 1/6/15 पूरा
11. रामा0 2/100/68, 2/46/7, 3/50/9, 4/21/3,4/30/208, 4/33/46, 4/36/20–21
12. वही 2/27/57, 4/8/12, 4/38/21–22, 2/150/62–68, 3/41/8, 6/9/22, 6/28/100–5
13. डॉ0 बलदेव उपाध्याय– संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास पृ0 189
14. वही 3/11/25, 25, 3/12/6, 3/17/14, 3/8/5
15. गीता, 3/14, अ0 4 (गीता प्रेस गोरखपुर)
16. रामा0 2/96/12 दर्शन चित्रकूटस्य मंदकिन्याश्चशोभने, 2/55/10–15
17. शांतिकुमार नानूराम व्यास, (रा0का0सं0) पृ0237–38
18. रामा0 2/117/3–4, 2/100/31
19. रामा0 3/62/6, 3/17/14, 5/105/संपूर्ण

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-100-103

मैथिली शरण गुप्त का साहित्य और नारी भावना

*डॉ० वन्दना त्रिपाठी**

किसी माला में प्रथम मणि, गगन में प्रथम नक्षत्र, उपवन में प्रथम पुष्प का जो महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है, वही हिन्दी कविता में, मैथिली शरण गुप्त जी का है। अपनी प्रतिभा के स्पर्श से उन्होंने राष्ट्र की सोयी हुई, चेतना को संजीवनी शक्ति प्रदान कर एक नयी वाणी दी। मैथिली शरण गुप्त भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं। उनके हृदय में नारी के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा का भाव है।

मैथिली शरण गुप्त जी का यह विचार है कि किसी भी परिवार एवं समाज को सुधारने में नारी का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। परिवार एवं समाज में नारी अनेक समस्याओं से जूझती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीय स्तर पर नारी जीवन को समझा और उसको दिशा दी है। गुप्त जी ने प्राचीन नारी चरित्रों को नए परिवेश और नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। चाहे वह साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयद्रथ वध, सिद्धराज सभी रचनाओं के स्त्री पात्र प्राचीन होकर भी नवीन है। मैथिली शरण गुप्त जी ने नारी के प्रति अत्यन्त संवेदनशीलता का दृष्टिकोण अपनाते हुए लिखा है–

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से उन्होंने नारी के सम्पूर्ण जीवन को सबल रहित बताकर उसकी असमर्थता व शारीरिक अक्षमता पर अपना खेद व्यक्त किया है। नारी पर लगाये गये आरोप के बंधनों का विरोध किया–

''नरकृत शास्त्रों के बंधन हैं,
सब नारी ही को लेकर,
अपने लिए सभी सुविधाएँ,
पहले ही कर बैठे नर।''

'द्वापर' में नारी समस्याओं का चित्रण करते हुए गुप्त जी ने लिखा–

''अविश्वास हा। अविश्वास ही
नारी के प्रति नर का।

**सहायक अध्यापक, पूर्व माध्यमिक विद्यालय पूरे जालिम रोखा रायबरेली(उ०प्र०)।*

नर के सौ दोष क्षमा हैं
स्वामी है वह घर का।''

मैथिली शरण गुप्त जी ने इतिहास की उन नारी पात्रों को उच्च शिखर पर बिठाया जिनके लिए हमारा इतिहास प्रायः मौन रहा है। गुप्त जी की नारियाँ एवं पारिवारिक सदस्यों की उन्नति एवं सुख–सुविधा का ध्यान रखना अपना कर्तव्य मानती है। गुप्त जी की नारियाँ चाहे कितनी ही दुख में जी रही हों किन्तु वे अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होगी। मैथिली शरण गुप्त जी में सीता जी को आदर्श मूर्ति के रूप में देखा। चाहे वह पत्नी, माँ और बहन के रूपों के साथ–साथ श्रमशील, रही। गुप्त जी का कहना है कि–

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुचि फलती हूँ
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ
तनुपात–सफलता स्वादु आज ही आया
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

राम के साथ सीता और लक्ष्मण के वन जाने का निर्णय सुनकर उर्मिला लक्ष्मण के मार्ग में विघ्न नहीं बनती। इस पर गुप्त जी ने कहा है कि–

''कहा उर्मिला ने हे मन।
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन,।''

मैथिली शरण गुप्त जी 'रामचरित मानस' की लांछिता कैकेयी को 'साकेत' में आदरणीय माता के रूप में उपस्थित कर सबको आश्चर्यचकित कर देते हैं और अपनी मौलिक उद्‌भावना का परिचय देते हैं। शोक और आत्मग्लानि से परिपूर्ण कैकेयी के अंतर की व्यथा इन शब्दों में बह उठती है–

'युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी
रघुकुल में भी थी एक अभगिन रानी।

कैकेयी का यह पश्चाताप उनके पाप की कालिमा को धो देता है। इस पर कैकेयी से बुलवाकर मानो उसके पापों को धो डाला है–

थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके
जो कोई कह सके, कहे क्यों चूके
युग युग तक चलती रही कठोर कहानी

रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।

मैथिली शरण गुप्त जी नारी को पुरुष से, अत्यधिक सहनशील मानते हैं और उसे पुरुष से श्रेष्ठ भी मानते हुए कहते हैं कि

''एक से नहीं दो मात्राएं नर से भारी नारी।''

मैथिली शरण गुप्त जी ने नारी को स्वाभिमानी रुप भी चित्रित किया है। उर्मिला अपने रूप का दर्प है। वह कामदेव को फटकार लगाती है और उसे अपने सिन्दूर बिन्दु की ओर देखने की चुनौती देती हुई कहती है कि यह शंकर जी के अग्नि नेत्र की भांति उसे भस्म कर देगा। 'यशोधरा' में भी गौतम बुद्ध जब वन से लौटते हैं तो वे उनसे मिलने नहीं जाती। बुद्ध स्वयं उनसे मिलने जाते हैं। गुप्त जी कहते हैं कि–

मानिनी मान तजो लो रही तुम्हारी बान
दानिनी आए स्वयंद्वार पर यह भव तत्र भवान्।।

नारी की महत्ता को स्थापित करते हुए द्वापर की 'विधृता' के माध्यम से नारी की भावना को अभिव्यक्ति दी है। अन्याय के समक्ष न झुकने की आह्वान करती हुई कहती है–

''जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रुक सकती
इस अन्याय समझ मरु मैं कभी नहीं झुक सकती।''

यशोधरा की गोपां को अपने प्रिय से केवल यही शिकायत है कि वह उससे कहकर गृह त्यागते। अपनी इस व्यथा को व्यक्त करते हुए वह कहती है–

''सखि वे मुझसे कहकर जाते।
सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरवमयी की बात।
पर चोरी–चोरी गये यही बड़ी व्याघात।''

मैथिली शरण गुप्त जी ने नारी को आदर्श पत्नी रुप में चित्रित करते हुए लिखा है–

पति ही पत्नी की गति है

गुप्त जी की नारियों में उनकी एक विशेषता विरहणी रुप भी है। साकेत में नव उर्मिला की चिंता, विषाद, विलाप आदि मनोभावों से ग्रस्त होकर उसे विरह में दीपक की भाँति जलती हुई मन में पति की प्रतिमा को स्थापित करती है–

''मानव मंदिर में सती प्रिय की प्रतिमा थाप।
जलती थी उसी विरह में बनी आरती आप।।''

इस प्रकार उर्मिला मन की व्यथा को गीत के माध्यम से कुछ इस प्रकार कहती है–

''वेदने तू भी भली बनी
पाई आज मैंने तुझी में अपनी चाह घनी।''

नारी को अपशब्द कहने वाला या अत्याचार करने वाला पुरुष भी तो किसी नारी के कोख से ही पैदा हुआ है। इस पर मैथिली शरण गुप्त जी का कहना है कि–

उपजा किन्तु अविश्वासी नर हाय! तुझी से नारी।
जाया होकर जननी भी है, तू ही पाप पिटारी।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त जी ने नारी के सभी गौरवपूर्ण रूप को उकेरा है चाहे वह पत्नी के रूप में हो, चाहे प्रेयसी के रूप में, या फिर वात्सल्यमयी माँ या विरहणी के रूप में नारी भावना का उदात्त भाव उनकी रचनाओं में दिखायी देता है।

सन्दर्भ

1. *मैथिली शरण गुप्त– यशोधरा, साहित्य सरोवर, 2020*
2. *मैथिली शरण गुप्त– साकेत, लोक भारती, प्रकाशन, 2005*
3. *रेवती रमण– भारतीय साहित्य के निर्माता, मैथिली शरण गुप्त, साहित्य भवन प्रकाशन*
4. *विराग गुप्ता– हमारे राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, सरस्वती ट्रस्ट, 2014*
5. *डॉ0 पुष्कर सिंह– मैथिली शरण गुप्त के काव्य में आधुनिकता का स्वरूप,अनुसंधान प्रकाशक, कानपुर 2016*
6. *www.hindikunj.com*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-104-113

स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति एवं उच्च शिक्षा में विधाओं का स्त्रीकरण

(लखनऊ विश्वविद्यालय के विशेष संदर्भ में)

*डॉ० अमर नाथ**

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र उच्च शिक्षा में विभिन्न विधाओं/विषयों/पाठ्यक्रमों में स्त्रियों की वृद्धि व सहभागिता पर केन्द्रित है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति सन् 1947 के पश्चात् पहले चार दशकों के दौरान धीरे–धीरे स्त्रियों की उच्च शिक्षा में उपस्थिति व सहभागिता बढ़ी है। आज से कुछ दशकों पहले तक स्त्रियां कुछ परम्परागत व सामान्य विषयों में शिक्षा प्राप्त करती थीं। परन्तु समकालीन समाज में उच्च शिक्षा स्तर पर स्त्रियां सामान्य विषयों जैसे– कला, समाज विज्ञान व मानविकी विषयों के साथ–साथ प्रोफेसनल व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों एवं विषयों, जैसे– इंजीनियरिंग, मेडिकल साइंस, अध्यापन शिक्षा, कृषि, विधिशास्त्र, वाणिज्यिक, अंतरिक्ष विज्ञान आदि में शिक्षा अर्जित कर रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से अनुभव एवं अवलोकन के आधार पर यह दृष्टिगत हो रहा है कि उच्च शिक्षा में कुछ विषयों में महिला और पुरुषों के कम्पोजीशन में बराबरी नहीं रहता है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें पुरुषों की सहभागिता बिल्कुल रहती ही नहीं, ऐसे विधाओं को समाज स्त्रीत्व विधा (feminine disciplines) के रूप में परिभाषित करता है। और ऐसे विषय भी हैं जिसमें लैंगिक–संयोजन महिलाओं के पक्ष में है। उच्च शिक्षा में इस प्रकार का चलन उभरकर सामने आ रहा है, जो प्रत्यक्ष रूप में एक प्रघटना का रूप धारण कर चुका है। ऐसा एक चलन जिसमें कुछ विषय 'महिला बहुसंख्यक' विषय बन गये हैं, जिसको समाज वैज्ञानिक 'स्त्रीकरण' की अवधारणा से परिभाषित करते हैं। इसको धरातलीय स्तर पर खोज करना, परीक्षण करना, प्रमाणित करना शोध का लक्ष्य है। प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक तथा वर्णनात्मक व अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है।

मुख्य शब्द – शिक्षा, विधा, स्त्रीकरण, विधाओं का स्त्रीकरण।

प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय–प्रगति तथा सभ्यता व संस्कृति के उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा, व्यक्ति और समाज में गहरा सम्बन्ध है। किसी भी समाज के प्रगति व विकास में स्त्री एवं पुरुष दोनों की समान भूमिका होती है। लेकिन पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं के लिए शिक्षा का ज्यादा महत्त्व है। क्योंकि कहा जाता है, कि यदि एक पुरुष शिक्षित होता है तो केवल एक पुरुष ही शिक्षित होता है, लेकिन एक स्त्री शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। साक्षरता और प्रारम्भिक शिक्षा

**असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र बाबा बरुआ दास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बेडकरनगर, (उ०प्र०) ।*

सामाजिक व मानव विकास की आवश्यकताओं को पूर्ण करती है । यह बेहतर स्वास्थ्य तथा आय के स्रोत के निर्माण में एक साधन है । और उच्च शिक्षा महिलाओं के सामाजिक प्रगति व गतिशीलता को सुनिश्चित करती है तथा बौद्धिक और वैयक्तिक विकास की ओर ले जाती है । इस प्रकार उच्च शिक्षा को वैयक्तिक, सामाजिक और पारिवारिक गतिशीलता के लिए महत्वपूर्ण पहलू के रूप में देखा जा सकता है । भारत में स्वत्रंता प्राप्ति के पश्चात अब तक उच्चतर शिक्षा में महिला नामांकन में व्यापक स्तर पर वृद्धि हुयी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय महिलाओं का कुल नामांकन 10 प्रतिशत से भी कम था जिसमें शैक्षिक वर्ष 2012–13 में 44.4 प्रतिशत तक वृद्धि हो चुकी है । आज से कुछ दशकों पहले तक स्त्रियां कुछ परम्परागत व सामान्य विषयों में शिक्षा प्राप्त करती थीं। परन्तु समकालीन समाज में उच्च शिक्षा स्तर पर स्त्रियां सामान्य विषयों जैसे – कला, समाजविज्ञान व मानविकी विषयों के साथ–साथ प्रोफेसनल व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों जैसे – इंजीनियरिंग, मेडिकल साइंस, अध्यापन शिक्षा, कृषि विज्ञान, विधिशास्त्र, वाणिज्यिक एवं अंतरिक्ष विज्ञान आदि में शिक्षा अर्जित कर रही हैं। जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक व्यवसायों को अपना रही हैं और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में सहभागी होकर समाज एवं राष्ट्र के विकास में योगदान दे रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य शिक्षा में स्त्रियों की दशा एवं उच्च शिक्षा में विधाओं के स्त्रीकरण चलन को विश्लेषित करना ।

शोध की पद्धतिशास्त्र

प्रस्तुत शोध–पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक तथा वर्णनात्मक व अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत अवलोकन विधि व साक्षात्कार अनुसूची और द्वितीयक स्रोतों के अन्तर्गत साहित्य, जरनल, शोध पत्रों, समाचार पत्रों, सरकारी दस्तावेजों एवं विश्वविद्यालय से प्राप्त तथ्यों व आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। शोध का अध्ययन क्षेत्र उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में स्थित 'लखनऊ विश्वविद्यालय' है। जहाँ पर सात संकायों में अध्ययन व शोधकार्य होता है । तथ्य संग्रहण के लिए तीन संकायों – कला, विज्ञान एवं वाणिज्य में संचालित 14 विषयों का तथा इन विषयों में स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष में अध्ययनरत् 140 छात्र–छात्राओं को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से उत्तरदाता के रूप में चयन किया गया है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य शिक्षा में स्त्रियों की दशाओं एवं उच्च शिक्षा में विधाओं के स्त्रीकरण चलन को विश्लेषित करना ।

उच्च शिक्षा में महिलाएं – भारतीय संदर्भ

पिछले लगभग डेढ़ सौ वर्षों में महिलाओं की शिक्षा में एक असाधारण विकास हुआ है, जो आधुनिक भारत में जीवन की एक सर्वाधिक स्पष्ट विशेषता है। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में लड़कियों की औपचारिक शिक्षा के लिए शायद ही कोई व्यवस्था थी धीरे–धीरे स्त्री शिक्षा में प्रगति हुयी। सर्वप्रथम ईसाई मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। सन् 1820 में पहला बालिका विद्यालय ईसाई धर्म अपनाने वाले परिवारों के बच्चियों के लिए खोला गया। परन्तु स्त्री शिक्षा को अपेक्षित प्रोत्साहन नहीं मिला। सन् 1901 में स्त्रियों की साक्षरता की प्रतिशतता कुल 0.8 प्रतिशत थी। उच्चतर शिक्षा में लड़कियों का कुल नामांकन 264 था, जिसमें से 78 लड़कियां मेडिकल कालेजों में 11 शिक्षा कालेजों में थी। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से अब तक उच्च शिक्षा स्तर पर महिलाओं के नामांकन में व्यापक स्तर पर वृद्धि हुयी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय महिलाओं का नामांकन उच्च शिक्षा स्तर पर 10 प्रतिशत से भी कम था, जो कि शैक्षणिक सत्र 2015–16 में 47.27 प्रतिशत तक वृद्धि हो चुकी है। सन् 1950–51 में उच्चतर शिक्षा में कुल 4 लाख नामांकन थे जिसमें से 3.5 लाख पुरूष एवं 0.5 लाख महिलाओं का नामांकन था। जो शैक्षणिक सत्र 2012–13 में कुल 296 लाख नामांकन में 133 लाख महिलाओं का नामांकन हो चुका था। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद का दशक विकास कार्यों और तकनीकी गतिविधियों से परिपूर्ण था इसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण आवश्यकता थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उच्च शिक्षा से सम्बंधित अनेक आयोगों का गठन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा में स्त्रियों के प्रवेश को प्रोत्साहन मिला। **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग** (1948–49) ने स्त्री शिक्षा का महत्व इस प्रकार बताया है – ''स्त्री शिक्षा के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते। यदि शिक्षा को पुरूषों और स्त्रियों के लिए सीमित करने का सवाल हो तो यह अवसर स्त्रियों को दे दिया जाए, क्योंकि उनके द्वारा ही भावी संतान को शिक्षा दी जा सकती है।''[10] इसके अतिरिक्त **शिक्षा आयोग** (1964–66) ने स्त्रियों की शिक्षा के संदर्भ में कहा है कि 'स्त्रियों की शिक्षा पुरूषों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। लड़कियों की शिक्षा पर जितना भी जोर दिया जाये उतना ही कम है।'[11] इस प्रकार इन शिक्षा आयोगों ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया है, जिसके

परिणामस्वरूप स्वतंत्रता पश्चात उच्च शिक्षा में महिलाओं की सहभागिता में तीव्र वृद्धि हुयी।

इसके अतिरिक्त अनेक समाजशास्त्रियों, नारीवादियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों ने स्त्रियों की शैक्षणिक स्थिति का अनुभवात्मक अध्ययन किया है। महिलाओं के लिए शिक्षा की आवश्यकता के संदर्भ में **मीनाक्षी मुखर्जी** (1984) का मत है कि 'पुरूषों से स्वतंत्र स्त्रियों की पहचान की अभिव्यक्ति वैचारिक दृष्टि से सम्भव है, परन्तु व्यावहारिक तौर पर नहीं।[12] एक पुरूष की अपेक्षा एक स्त्री के लिए सामाजिक अनुपालन बहुत आवश्यक है। सामान्यतः एक महिला की पहचान स्वयं और अन्य लोगों द्वारा पुरूषों के साथ एक स्त्री और एक मां के रूप में की जाती है।' मीनाक्षी का मानना है कि परिवार ही स्त्रियों को गुलाम बनाने वाली संस्था नहीं है, समाज की प्रकृति ही ऐसी है जिसमें स्त्रियों के साथ अनुदार रूप में व्यवहार किया जाता है। अतः स्त्री शिक्षा परिवार एवं समाज के विकास के लिए अपरिहार्य है।

शिक्षा महिलाओं के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है, चाहे वह पक्ष पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हो या अपने स्वास्थ्य, स्वच्छता व विकास के अधिकारों से सम्बंधित हो क्योंकि शिक्षा आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ वैचारिक स्वतंत्रता भी देती है, उसे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग करती है। **नीता तपन** (2000) का मत है कि 'अच्छा स्वास्थ्य जीवन की सभी गतिविधियों का आधारभूत है और महिलाओं में प्रजनन स्वास्थ्य तो उनकी परिस्थिति का निर्धारक तत्व है लेकिन प्रजनन स्वास्थ्य के लिए जिस जागरूकता की आवश्यकता होती है, वह शिक्षा से प्राप्त होती है । जिससे महिलाएं स्वइच्छित प्रजननता, स्त्री गर्भपात को रोकने, बच्चों के बेहतर समाजीकरण व नियोजन विकास, लिंग समानता, सामाजिक तथा व्यावसायिक अवसरों के चयन में, पर्यावरणीय जागरूकता, धार्मिक वस्तुपरकता, राजनैतिक चेतना, विधि प्रावधान तथा महिला अधिकार, उत्पादन तथा उपभोग प्रतिमान आदि में निश्चित सामाजिक गतिशीलता ध्वनित होगी।' अतः शिक्षा द्वारा महिलाओं में स्वविवेक का संचार होता है और परिवार में भागेदारी करके सक्रिय भूमिका का निर्वहन करती है। वे जीवन सम्बंधी निर्णयों का गम्भीरता से विश्लेषण कर उसे क्रियान्वित करती हैं। यह क्रियाकलाप ही उन्हें परिवार व समाज में सम्मान प्रदान करते हैं।

विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं गैर सकरकारी संगठनो के माध्मय से भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता के चेतना को बल मिला तथा साथ ही समाज में अभिभावकों के मानसिकता में लड़कियों की शिक्षा के प्रति हुए बदलावों एवं

लड़कियों के स्वयं अपने जीवन के प्रति जागरूकता ने उच्च शिक्षा के प्रति उन्हें प्रोत्साहित किया है। महिलाओं के लिए शिक्षा के प्रकार्यों के बारे में **नीरा देसाई व ऊषा ठक्कर** का अध्ययन दर्शाता है कि, 'जहां साक्षरता और प्रारम्भिक शिक्षा सामाजिक तथा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और अधिक आय अर्जन तथा बेहतर स्वास्थ्य का साधन है। वहीं महिलाओं की उच्च शिक्षा उनकी सामाजिक व व्यावसायिक गतिशीलता को प्रेरित करती है ओर उनके बौद्धिक तथा वैयक्तिक विकास को विस्तारित करने के साथ ही साथ एक अभिजात संस्कृति सृजित करती है।' अतः शिक्षा एवं उच्च शिक्षा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सशक्तीकरण को प्रेरित करती है। इस प्रकार वर्तमान समय में महिला शिक्षा के प्रति लोगों के व्यवहार और दृष्टिकोण में तीव्र गति से बदलाव आ रहा है। शिक्षा को जीवन की सामान्य समस्याओं को सुलझाने के लिए अत्यंत आवश्यक मानकर लड़कियों को उच्च शिक्षा दी जा रही है जिससे वर्तमान में स्त्रियों की उच्च शिक्षा स्तर पर सहभागिता में तीव्र वृद्धि दर्ज की गयी है।

प्राथमिक तथ्यों का वर्गीकरण व विश्लेषण

उच्च शिक्षा स्तर पर महिलाओं के रुझान और विभिन्न विषयों में उनकी सहभागिता को समझने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय में सत्र 2009–10 में संचालित विषयों पर केन्द्रित किया गया है, लेकिन विस्तृत रूप से समझने के लिए पाँच सत्रों में संचालित विषयों के तथ्यों का अवलोकन किया गया है। यद्यपि अध्ययन के उद्देश्य से तीन संकायों में संचालित हर विषय के बारे में जानकारी लिया गया है (सत्र 2005–06 से सत्र 2009–10 तक), विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से निम्नलिखित सारिणी में पाँच सत्रों के केवल उन चौदह विषयों के बारे में तथ्य स्पष्ट किया जा रहा है जिसमें महिलाओं की सहभागिता ज्यादा है, यानि जहाँ लैंगिक–संयोजन महिलाओं के पक्ष में है ।

सारिणी –1

सत्र 2009–10 को सम्मिलित करते हुए पिछले 5 सालों के कुछ चयनित विषयों में लैंगिक–संयोजन

वर्ष–सत्र							
क्र0 सं0	विषय	लिंग	2005–06	2006–07	2007–08	2008–09	2009–10
1.	गृहविज्ञान	महिला	57	49	71	58	58
		पुरुष	1	14	00	3	00
		कुल	**58**	**63**	**71**	**61**	**58**
2.	मनोविज्ञान	महिला	44	41	40	27	35
		पुरुष	7	8	5	11	6
		कुल	**51**	**49**	**45**	**38**	**41**
3.	समाजशास्त्र	महिला	188	148	147	130	83
		पुरुष	144	137	61	48	35
		कुल	**332**	**285**	**208**	**178**	**118**
4.	संस्कृत	महिला	87	109	104	57	63
		पुरुष	50	52	32	24	20
		कुल	**137**	**161**	**136**	**81**	**83**
5.	शिक्षाशास्त्र	महिला	15	13	14	11	12
		पुरुष	5	4	8	5	1
		कुल	**20**	**17**	**22**	**16**	**13**
6.	जीवविज्ञान	महिला	45	41	34	41	37
		पुरुष	17	18	7	9	10
		कुल	**62**	**59**	**41**	**50**	**47**
7.	जैव रसायन शास्त्र	महिला	17	16	19	15	21
		पुरुष	9	9	3	5	2
		कुल	**26**	**25**	**22**	**20**	**23**
8.	पौधविज्ञान	महिला	43	42	44	27	37
		पुरुष	11	16	13	12	10
		कुल	**54**	**58**	**57**	**39**	**47**
9.	मानवशास्त्र	महिला	12	11	10	8	11
		पुरुष	1	4	3	2	1
		कुल	**13**	**15**	**13**	**10**	**12**

10.पर्यावरण विज्ञान	महिला	23	27	21	22	25
	पुरुष	7	8	9	7	2
	कुल	**30**	**35**	**30**	**29**	**27**
11.रसायन विज्ञान	महिला	61	48	59	61	54
	पुरुष	40	41	35	25	20
	कुल	**101**	**89**	**94**	**86**	**74**
12.वनस्पति विज्ञान	महिला	42	29	49	40	41
	पुरुष	18	32	5	9	6
	कुल	**60**	**61**	**54**	**49**	**47**
13. सूक्ष्म जैवविज्ञान	महिला	–	–	31	29	26
	पुरुष	–	–	11	3	3
	कुल	**–**	**–**	**42**	**32**	**29**
14. कामर्स प्योर	महिला	85	68	100	85	106
	पुरुष	108	116	82	69	47
	कुल	**193**	**184**	**182**	**154**	**153**

स्नातकोत्तर (एम0ए0, एम0एस–सी0, एम0काम0) प्रथम वर्ष के विषयों का विवरण

उपर्युक्त सारिणी–1 से लखनऊ विश्वविद्यालय में पाँच सत्रों क्रमशः 2005–06, 06–07, 07–08, 08–09 एवं 09–10 में कला, विज्ञान तथा वाणिज्य संकाय के अन्तर्गत स्नातकोत्तर (एम0ए0, एम0एस–सी0 एवं एम0काम0 प्रथम वर्ष) स्तर पर संचालित कुछ चयनित विषयों में विद्यमान लैंगिक–संयोजन स्पष्ट हो रहा है। ये विषय क्रमशः इस प्रकार हैं– गृहविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, संस्कृत, शिक्षाशास्त्र, जीवविज्ञान, जैव रसायनशास्त्र, पौध विज्ञान, मानवशास्त्र, पर्यावरण विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, सूक्ष्म जैवविज्ञान एवं कामर्स प्योर। उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि पिछले पाँच सालों, जिनमें सत्र 2009–10 भी शामिल है, में महिलाओं की सहभागिता, पुरुषों की अपेक्षा अधिक है।

लखनऊ विश्वविद्यालय में कला संकाय के अंतर्गत संचालित 37 विधाओं में से 14 विधायें – अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, अंग्रेजी, हिन्दी साहित्य, मध्यकालीन भारतीय इतिहास, मनोविज्ञान, संस्कृत, समाजशास्त्र, महिला अध्ययन, गृहविज्ञान ऐसे विषय हैं जिनमें स्त्रियों की सहभागिता पुरूषों की अपेक्षा अधिक है । इनमें से 5 विधाओं (संस्कृत, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र तथा गृहविज्ञान) में नामांकन 70 प्रतिशत से अधिक है । विज्ञान संकाय के अंतर्गत कुल 19 विधाओं में से 11 विधायें– वनस्पतिशास्त्र, जैवरसायनशास्त्र, मानवशास्त्र, रसायनशास्त्र, पर्यावरण

विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, मासकम्युनिकेशन इन साइंस, सूक्ष्म जैवविज्ञान, फार्मास्युटिकल केमिस्ट्री, पौधविज्ञान तथा जीवविज्ञान में भी स्त्रियों की सहभागिता पुरूषों की अपेक्षा बहुसंख्यक रूप में है । तथा इनमें से 8 विधाओं (वनस्पतिशास्त्र, जैवरसायनशास्त्र, मानवशास्त्र, रसायनशास्त्र, पर्यावरण विज्ञान, सूक्ष्म जैवविज्ञान, पौधविज्ञान तथा जीवविज्ञान) में नामांकन 70 प्रतिशत से अधिक है । इसी प्रकार वाणिज्य संकाय में संचालित कुल 2 विधाओं – व्यावहारिक अर्थशास्त्र और कामर्स प्योर में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है । तथा कामर्स प्योर में लगभग 70 प्रतिशत स्त्रियों का नामांकन है ।

इस प्रकार कला, विज्ञान एवं वाणिज्य तीनों संकायों से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट हो रहा है कि अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में से 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वयं की रूचि होने, 27.14 प्रतिशत ने अच्छा विषय एवं नौकरी का अवसर अधिक होने, 5.71 प्रतिशत ने पिता व अभिभावक से प्रेरित होकर तथा 2.14 प्रतिशत छात्र–छात्राओं ने अन्य कारणों से इस विषय में अध्ययन कार्य जारी रखा है। अगर तार्किक रूप से देखा जाय तो 65 प्रतिशत उत्तरदाता जो स्वयं की रूचि के कारण एवं 27.14 प्रतिशत उत्तरदाता जो कि अच्छा विषय व नौकरी की अधिक सम्भावना होने के कारण इन विषयों में अध्ययनरत हैं, दोनों की प्रकृति एक जैसी है। अर्थात् कहा जा सकता है कि 92.14 प्रतिशत छात्र–छात्राएं स्वयं इन विषयों की तरफ आकर्षित हैं अर्थात् स्वेच्छा से इन विषयों में अध्ययनरत हैं। इन विषयों में रोजगार के अवसरों के बारे में 82.14 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि अध्यापन के साथ अन्य क्षेत्रों जैसे– शोध ाकार्य, वैज्ञानिक, सिविल सर्विसेज, बैंकिंग एवं प्राइवेट कम्पनियों आदि क्षेत्रों में तथा 17.86 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि केवल अध्यापन क्षेत्र में ही रोजगार की सम्भावनाएं हैं।

कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकायों के विषयों में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होने के प्रति उत्तरदायी कारकों में इन विषयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में से 95.61 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं का मानना है कि इन विषयों में लड़कियों व महिलाओं की रूचि अधिक है और ये विषय महिलाओं के लिए ठीक भी है। जिससे लड़कियाँ इन विषयों की तरफ अधिक आकर्षित हैं। तथा इन विषयों में लड़कों व पुरुषों की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम होने के कारणों के प्रति इन विषयों में अध्ययनरत 86.62 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि लड़कों व पुरुषों की रूचि इन विषयों में न होकर अन्य विषयों व प्रोफेशनल एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों जैसे– एम0बी0ए0, एम0सी0ए0, मेडिकल आदि की तरफ रूचि प्रकट करते हैं। जिससे इन विषयों में लड़कों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत

कम है। अतः कला संकाय, विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय के विषयों की तरफ छात्र–छात्राओं के आकर्षित होने के कारकों में काफी समानता देखी जा सकती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष उद्घटित हुआ कि विश्वविद्यालय में कला संकाय, विज्ञान संकाय और वाणिज्य संकाय के अधिकांश विषयों में महिलाओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा अधिक है। इसके अलावा तीनों संकायों के कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें अध्ययनरत कुल छात्र–छात्राओं का 2/3 से भी ज्यादा महिलाओं की सहभागिता हैं कला संकाय में ऐसे 5 विषय हैं– गृहविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, संस्कृत एवं शिक्षाशास्त्र । विज्ञान संकाय में 8 विषय हैं– जीवविज्ञान, जैव रसायनशास्त्र, पौधविज्ञान (Plant Science), मानवशास्त्र, पर्यावरण विज्ञान (Environmental Science), रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान (Botany), व सूक्ष्म जैवविज्ञान (Micro-biology) तथा वाणिज्य संकाय में एक विषय है– कामर्स प्योर। अर्थात कला संकाय, विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय के उक्त विषयों में स्त्रीकरण की प्रवृत्ति पायी गयी। ।

कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के ऐसे विषयों जिनमें महिलाओं की उपस्थिति 2/3 से अधिक है ऐसा पाया गया है कि इन विषयों में लड़कियों की रूचि अधिक है और वे इन विषयों को लड़कियों के लिए ठीक मानती हैं। इसलिए लड़कियाँ स्वतंत्रतापूर्वक स्वेच्छा से स्वयं ही ऐसे विषयों को अपने भविष्य व कैरियर के लिए चयन करती है । **करूणा चनाना** (2007) ने कहा कि '' स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम चार दशकों में उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है तथा वैश्वीकरण के प्रभाव से महिलाओं ने परम्परागत विषयों के साथ–साथ विभिन्न वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में उपस्थिति दर्ज करायी है।''[17]

अध्ययन से स्पष्ट है कि कला–संकाय की अपेक्षा विज्ञान संकाय में महिलाओं की औसतन सहभागिता अधिक है। इस प्रकार कला संकाय के विषयों की अपेक्षा विज्ञान संकाय के विषयों के जेण्डर–कम्पोजीशन में अत्यधिक असंतुलन हैं। अतः वर्तमान में विज्ञान विषयों व पाठ्यक्रमों में महिलाओं की सहभागिता अधिक है। इसलिए कहा जा सकता है कि वर्तमान में विज्ञान में महिलाओं की सहभागिता में तीव्रगति से वृद्धि हो रही है। लेकिन सार्वभौमिक रूप से देखा जाय तो अभी भी महिलाओं की शिक्षा दर, पुरुषों से काफी पीछे है। इसके अतिरिक्त कामर्स जो कि एक 'पुरुष बहुसंख्य विषय' के रूप में माना

जाता था। अब एक महिला बहुसंख्य विषय के रूप में रूपान्तरित हो चुका है। अतः वाणिज्यिक विषयों में महिलाओं की सहभागिता में निरन्तर वृद्धि हुई है। और आज यह पाठ्यक्रम महिला बहुसंख्य पाठ्यक्रम के रूप में विद्यमान है। अतः कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा स्तर के उक्त कई विधाओं में स्त्रीकरण का चलन विद्यमान है ।

संदर्भ

1. *अग्निहोत्री, रवीन्द्र आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएं और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2010*
2. *Report of the University Education Commission , Government of India, New Delhi. 1950*
3. *Report on Education in India (Kothari Commission) , New Delhi l 1965*
4. *Report of the National Committee on Women Education , Government of India, New Delhi. 1959*
5. *Report on Education in India (Kothari Commission) , New Delhi.1965*
6. *Report of the University Education commission , Government of India, New Delhi.1950*
7. *Report on Education in India (Kothari Commission) , New Delhi.1965*
8. *Mukharjee, Meenakshi , 'Reality & Realism – Indian Women as Protagonists in Four Ninteenth Century Novels' in Economic and Political Weekly, Vol. XIX No. 2.1984*
9. *Tapan, Neeta Need for women's Empowerment,'Rawat Publication, Jaipur. 2000*
10. *Desai, Neera and Thakkar, Usha , Women in Indian Society, National Book Trust; New Delhi. 2001*
11. *Report of University Education Commission , Government of India, New Delhi. 1950*
12. *Report on Hansa Mehta Commission on Differentiation in Curriculum for Boys & Girls , New Delhi. 1964*
13. *Chanana, Karuna , 'Globalisation, Higher Education and Gender : Changing Subject Choices of Indian Women Students' in Economic & Political Weekly, Vol. 42, No. 7 2007*
14. *University Grant Commission Report , UGC, New Delhi. 2013-14*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-114-120

भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय : डॉ० भीम राव अम्बेडकर का दृष्टिकोण

*डॉ० अनुराधा सिंह**

सारांश

सामाजिक न्याय आधुनिक काल की प्रमुख विशेषता है। इस शब्द का पहली बार प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में इटली के एक पादरी लिगि तपारेली द एजेग्लिओं द्वारा किया गया। लेकिन फ्रांसीसी क्रांति जिसने स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुतता का उद्घोष किया, से सामाजिक न्याय को स्वीकृति प्राप्त हुई। सामाजिक न्याय समाज के प्रत्येक स्तर पर उचित और न्यायपूर्ण व्यवस्था का समर्थन करता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग व समूह के कमजोर लोगों के हितों की रक्षा व संवर्धन करना, समाज के अंतिम व्यक्ति को सम्मानजनक एवं प्रतिष्ठित जीवन स्तर तक पहुँचाना सामाजिक न्याय का प्रधान लक्ष्य है। भारत में सामाजिक न्याय का संबंध जाति व्यवस्था से है। जिसमें उच्चता व निम्नता के आधार पर समाज का वर्गीकरण है। इसने न केवल सामाजिक असमानता को जन्म दिया है अपितु इससे भारतीय लोकतन्त्र को भी खतरा है। अंबेडकर ने एक ऐसे समाज व्यवस्था की परिकल्पना की जो समानता, स्वतंत्रता व बन्धुत्व के आदर्श पर आधारित हो। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य अंबेडकर के सामाजिक न्याय के संदर्भ में क्या विचार थे व इस संदर्भ में उनके क्या तर्क थे इसका विश्लेषण करना है।

न्याय की अवधारणाा में साथ सामाजिक न्याय का निकट का संबंध है। सामान्यता निष्पक्ष या पक्षपातरहित बर्ताव न्याय है। जब ऐसा बर्ताव समाज अपने सभी वर्गो–उपवर्गो के साथ करता है तो उसे सामाजिक न्याय कहते है। सामाजिक न्याय को कानून, दर्शन और राजनीति विज्ञानियों द्वारा भिन्न–भिन्न तरीके से देखा गया है। सामाजिक न्याय का तात्पर्य सभी नागरिकों को सामाजिक, भौतिक, और राजनैतिक संसाधनों का न्यायसंगत वितरण है। इसमें सभी असमनाताओं और भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया जाता है और इसके तहत सामाजिक मामलों और आर्थिक गतिविधियों में सभी पुरुषों और महिलाओं को समान अवसर प्रदान किया जाता है।

अम्बेडकर के सामाजिक न्याय का विचार बुद्ध के संदेशों से अपना आध ाार ग्रहण करता है न कि फ्रांस की क्रांति से।[1]अंबेडकर का सामाजिक न्याय एक आदर्श है या यो कह सकते है कि समाज बनाने का साधन है। उन्होंने जातिहीन समाज का लक्ष्य रखा। भारत में सामाजिक वर्गीकरण जाति–प्रथा पर आधारित है। जिसमें एक व्यक्ति का सदस्य उसी जाति का माना जाता है, जिसमें उसका जन्म हुआ है और वह मृत्यु–पर्यन्त उसका सदस्य रहता है। अंबेडकर ने इस

**सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग सी०एम०पी० डिग्री कालेज प्रयागराज, (उ०प्र०)*

व्यवस्था को शोषण पर आधारित माना और इसमें बदलाव की मांग की। डॉ0 अंबेडकर के अनुसार हिन्दू धर्म ने जिस चातुर्वर्ण व्यवस्था का सृजन किया है, उसने जाति–व्यवस्था को आधार प्रदान किया। चातुर्वर्ण श्रेणीगत असमानता के सिद्धांत पर आधारित था। भारतीय समाज व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया कि जाति एक स्वयं मर्यादित संस्था है। उसमें भोजन आदि सामाजिक व्यवस्था पर प्रतिबंध डाले जाते है। जाति अंतर्गत विवाह बंधन के कारण ही जाति व्यवस्था सुरक्षित रह सकी है। अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को समाप्त करने का सुझाव दिया।उन्होंने जाति व्यवस्था में परिवर्तन कर न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना पर बल दिया जो शोषण के बजाय पोषण पर आध ाारित हो उनके अनुसार स्वतन्त्रता समानता और बंधुता का दूसरा नाम न्याय है। लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्षपाती होने के कारण उनका मानना था कि राजनीतिक लोकतन्त्र से पूर्व हमें सामाजिक लोकतन्त्र बनाना होगा। सामाजिक लोकतन्त्र जीवन का वह मार्ग है, जिसमें स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्व जीवन के सिद्धांत रूप में हो। इन तीनों तत्वों को अलग–अलग नहीं बल्कि समूह के रूप में देखना चाहिए। इन्हें पृथक करने का अर्थ होगा कि हम लोकतन्त्र के उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहें। डॉ0 अंबेडकर के दृष्टिकोण में स्वतन्त्रता व्यक्तित्व के निध ाारण में प्रमुख भूमिका निभाती है। किसी भी स्वतन्त्र एवं प्रजातन्त्रीय समाज व्यवस्था के लिए स्वतन्त्रता का होना आवश्यक है। स्वतन्त्रता का तात्पर्य है, मूलभूत विषयों में व्यक्ति व्यक्ति स्वतन्त्र हो। उस पर समाज राज्य या अन्य किसी व्यक्ति या वर्ग का कोई बन्धन नहीं हो।[2]स्वतन्त्रता से तात्पर्य है कि लोगों को अपने भाग्य का निर्धारण करने की छूट हो, आवागमन की स्वतन्त्रता हो, अपने रूचि के अनुसार व्यवसाय को करने की स्वतन्त्रता हो। अंबेडकर का मानना है कि,समाज में व्यक्तियों स्वतन्त्र आवागमन होना चाहिए। लोगों को अपने पसंद का कार्य करने पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए जो हिन्दू सामाजिक ढाँचे में नहीं पायी जाती है– यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण के व्यवसाय से जुड़ा रहता है। ....व्यवसायिक नियमों की अवहेलना को दण्डनीय बनाकर मनु ने हिन्दू समाज से आर्थिक स्वतन्त्रता को पूर्णतया विलोपित कर दिया।[3] व्यक्तियों को किसी भी व्यवसाय में प्रवेश करने स्वतन्त्रता होनी चाहिए.... यदि वह रोजगार में सुरक्षा से वंचित हो जाता हो जाता है तो वह स्वतन्त्रता के सार के साथ असहनीय मानसिक व शारीरिक गुलामी का शिकार बन जाता है, आर्थिक सुरक्षा के बिना स्वतन्त्रता किसी लायक नहीं है। व्यक्ति स्वतन्त्र हो सकते है पर वे तब भी स्वतन्त्रता के प्रयोजनों का अहसास करने में असमर्थ रहते है।[4]

अपने व्यक्तित्व का विकास करने तथा भौतिक सुख–सुविधाओं की प्राप्ति

के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमाने, विचार विनिमय, संगठन आदि की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, लेकिन व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से अन्य लोगों का अहित नहीं होना चाहिए। कोई मनुष्य भय एवं भूख से पीड़ित न हो। उस पर किसी का अनावश्यक नियंत्रण न हो और वह शांतिपूर्वक न्यायोचित समाज में रहता हो।

स्वतन्त्रता जन सामान्य के कार्य व्यवहार का स्वाभाविक अंग हो इसके लिए समाज में सभी का शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्रियों, शूद्रों व अन्त्यजों को शिक्षा के अधिकार से वंचित करना समाज के लिए हानिकारक है। सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हो। अंबेडकर का दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा और ज्ञान अछूतों की स्थिति में सुधार को बेहतर ढंग से कार्यान्वित करेंगे। शिक्षा मनुष्य को प्रबुद्ध बनाती है उसे उसके आत्मसम्मान से परिचित कराती है और एक बेहतर आर्थिक जीवन गुजारने में मदद करती है। अंबेडकर ने शिक्षा की ब्रिटिश नीति की आलोचना की क्योंकि इसने निचली जातियों के बीच शिक्षा को पर्याप्त रूप से प्रोत्साहित नहीं किया था।

सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु समानता एक महत्वपूर्ण घटक है। समानता से तात्पर्य है, समाज में कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग न हो। समता की माँग में जात–पांत, छुआछूत तथा वर्णो का स्थान नहीं होना चाहिए। सभी लोग कानून की दृष्टि से समान हो। समानता के बिना स्वतन्त्रता कुछ मुट्ठीभर लोगों के लिए ही उपलब्ध होगी। यदि हमें अपने लोकतांत्रिक ढाँचे को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना है तो इनके बीच शीघ्र समन्वय स्थापित करना होगा अन्यथा असमानता के शिकार लोग इसके विरोध में खड़े होकर राजनीतिक लोकतन्त्र dksu"V dj nsaxs[5] भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में महिलाओं को शिक्षा और सम्पत्ति के समान अधिकार नहीं प्राप्त थे। उनका आग्रह था कि महिलाओं को भी पुरुषों के समान ही सभी क्षेत्रों में अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

बन्धुत्व या भ्रातृत्व की भावना उस वातावरण का सृजन करती है, जिसमें व्यक्ति, स्वतंत्रता एवं समानता का पूर्ण लाभ ले सके। बन्धुत्व का अर्थ सभी मनुष्यों में प्रेम एवं भाईचारे की भावना से है जिसके आधार पर सब लोग मिलकर शांतिपूर्वक रहते है। उनका मानना था कि एक आदर्श समाज में सभी व्यक्तियों के विचार मूलतः भ्रातृत्व युक्त हो उनमें यह चेतना हो कि वे सब एक है, आपस में सब भाई है, उनमें ऐच्छिक रूप से मिलने व उठने–बैठने की स्वतन्त्रता हो। अर्थात् सभी सदस्यों में सामाजिक समस्याओं को साथ–साथ मिलकर सुलझाने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।[6] उन्होंने सदैव नवीन विचारों को प्रोत्साहन

दिया और माना कि विचारों एवं संस्थाओं में मनुष्य की आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहना चाहिए। भ्रातृत्व की भावना एक ऐसी भावना है जो व्यक्ति को दूसरों की भलाई के साथ जोड़ती है। भ्रातृत्व की भावना ही समाज में नैतिक व्यवस्था को बनाये रखने में मदद करती है। हिन्दू समाज में इसी भ्रातृत्व की भावना का अभाव है। जातियों के मध्य घनिष्ठता का अभाव है, उनमें ऊँच–नीच की भावना है, जिसके कारण जातियों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता व घृणा पायी जाती है, अतः घृणा एवं प्रतिद्वन्द्विता का उन्मूलन भ्रातृत्व का मुख्य गुण है।

डॉ0 अम्बेडकर भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व को आवश्यक मानते थे। इन तीनों की एकता से ही एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है। डॉ0 अंबेडकर मात्र आदर्शवादी विचारक नहीं थे, अपितु व्यवहारिक जीवन में भी उन्होंने सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु प्रयत्न किया। डॉ0 अंबेडकर का मानना था कि जाति व्यवस्था और इसका धार्मिक आधार दोनों की प्रकृति न केवल दमनकारी है, अपितु वे स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व का खंडन भी करते है। भारत के जाति आधारित समाज में इन तीनों तत्वों का अभाव है। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए उन्होंने धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलन के साथ–साथ राजनीतिक सुधार हेतु भी आजीवन प्रयत्न किया। उन्होंने सामाजिक रूप से पिछड़ी दलित जाति (अनुसूचित जाति) हेतु जल और मंदिर प्रवेश के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही को नेतृत्व प्रदान किया। महाड़ का चावदार तालाब सत्याग्रह 1927 कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन और मालाबार में गुरवयूर मंदिर के लिए सत्याग्रह के रूप में प्रत्यक्ष कार्यवाही शुरू की। ये आंदोलन समता स्थापित करने के आंदोलन थे। जैसा कि उन्होंने महाड़ के ऐतिहासिक चावदार तालाब पर कहा था, ''यह सम्मेलन समता के ध्वज को फहराने के लिए आयोजित किया गया है और इस प्रकार इसकी तुलना 1789 में फ्रांस की नेशनल असेम्बली से की जा सकती है।[7]

सामाजिक और धार्मिक सत्याग्रहों के पश्चात् डॉ0 अंबेडकर ने अछूत जातियों के संघर्ष को राजनीति आयाम भी प्रदान किया। उनकी मान्यता थी कि सामाजिक सुधारों के बाद ही राजनैतिक सत्ताएँ कायम होती है। दलित की समस्या उनकी दृष्टि में केवल सामाजिक समस्या ही नहीं थी उनका मत था कि दलितों को राजनीतिक सत्ता के लिए भी संघर्ष करना होगा और एक बार राजनीतिक सत्ता में भागीदारी मिल गई तो सामाजिक न्याय के आधार पर समाज के पुनर्निर्माण का कार्य सरल हो जायेगा। लार्ड साउथब्रो समीति, साइमन कमीशन, गोलमेज सम्मेलन के माध्यम से उन्होने दलित जातियों के

सत्ता में भागीदारी के प्रश्न को उठाया। उनके और गाँधी के बीच हुए पूना समझौते के माध्यम से उन्होंने दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन की बजाय स्थानों के आरक्षण को स्वीकार किया। उन्होंने दलित जातियों को अपना जीवन स्तर उन्नत करने और जितना संभव हो सके उतनी राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

भारत में जब सामाजिक न्याय की बात की जाती है तो अंबेडकर के साथ गाँधी के विचारों की चर्चा भी की जाती है। गाँधी जाति व्यवस्था के बजाय उससे उत्पन्न अस्पृश्यता पर प्रहार करते है। अस्पृश्यता उनकी दृष्टि में एक कलंक है जो समानता के विपरीत है। अस्पृश्यता या छुआछूत वर्ण व्यवस्था की अनिवार्य विकृति न होकर बाहरी विकृति है। वह सामाजिक संरचना में समतावादी सुधारों के जरिए इस व्यवस्था और अन्याय का अंत करना चाहते थे। गाँधी जी छुआछूत दूर करने के लिए आदर्शवादी व दीर्घकालिक उपायों की बात करते थे। इसके विपरीत अंबेडकर इन दीर्घकालिक उपायों से संतुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म में रहते हुए, अस्पृश्यों का उद्वार संभव नहीं, अतः इसका एकमात्र हल धर्मान्तरण ही है। अंबेडकर छुआछूत दूर करने के लिए व्यावहारिक, ठोस व त्वरित उपायों पर बल देते है। दलित जातियों में आत्मसम्मान जाग्रत करने हेतु उन्होंने–शिक्षित बनों, संघर्ष करो और संगठित रहो की रणनीति सुझायी।

दलितों की राजनीति में सशक्त उपस्थिति दर्ज हो सके इसके लिए उन्होंने गंभीर प्रयास किया। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (1937) अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ (1942) की स्थापना और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की नींव रखी जिसे उनकी मृत्यु के पश्चात् 1957 में उनके अनुयायियों ने स्थापित किया।

डॉ0 अंबेडकर पश्चिमी विचारों से प्रभावित थे। इस आधार पर उन्होंने एक लोकतांत्रिक समाज की परिकल्पना की लोकतन्त्र से उनका तात्पर्य राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र से था। उन्होंने देखा कि राजनीतिक लोकतन्त्र तब तक नहीं चल सकता जब तक उसके आधार में सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र न हो। संविधान सभा में अपना वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा, '26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभासों से भरे जीवन में प्रवेश करने जा रहे है। राजनीति में हमारे पास समानता होगी तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता। ... आखिर कब तक विराधाभासों से भरे इस जीवन को जारी रखेंगे? कब तक हम हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता

को नकारना जारी रखेंगे? अगर हम इसे लंबे समय तक नकारते रहे, तो हमारी राजनीति खतरे में पड़ जाएगी।[8]

डॉ0 अंबेडकर का मानना था कि सामाजिक व्यवस्था की अविषमतापूर्ण स्थिति लोकतन्त्र के लिए आवश्यक शर्त है। समाज में शोषक और शोषित वर्ग नहीं होने चाहिए। यदि समाज में ऐसी स्थिति उपस्थित रहती है तो लोकतन्त्र में विभाजन के बीज पनपने लगेंगे जिसका समाधान असंभव है। राजनीति नैतिकता से शून्य नहीं हो सकती है। अंबेडकर का मानना था कि जो लोग मानते है कि नैतिकता के बिना राजनीति की जा सकती है, वो बहुत गलत सोच रहे है, और यह लोकतन्त्र के लिए खतरनाक साबित होगा।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में जो कमियां व अवरोध थे, उन्हें डॉ0 अम्बेडकर ने बहुत नजदीक से देखा। उन्होंने अन्याय के कारणों को मुख्यतः यहाँ की जाति व्यवस्था में देखा। जाति व्यवस्था के विश्लेषण के फलस्वरूप उन्होने पाया कि इसकी जड़े धर्म में है और यह धर्म कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों का पक्षपोषण करता है। वह अन्याय के मूल में गये और न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिए एक नये विधान की आवश्यकता महसूस की। संविधान निर्माण की प्रारूप समीति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने उन प्रावधानों का खाका खींचा जो हाशिए पर स्थित लोगों को उनके मूलभूत मानवाधिकारों को प्रदान कर सके। कानून मंत्री के रूप में उन्होंने 'हिन्दू कोड बिल' का प्रस्ताव रखकर महिलाओं के मानवाधिकारों की भी आवाज उठाई।

अंबेडकर से पूर्व भी सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए अनेक प्रयास भारत में किये जा चुके थे या चल रहे थे। अंबेडकर ने इन प्रयासों को और गति प्रदान की। उन्होंने दलितों को उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार दिलाने के प्रयास किये। लौकिक जीवन के लिए ये समस्त अधिकार आवश्यक है, परंतु एक धार्मिक व्यक्ति होने के कारण उन्होने यह भी महसूस किया कि व्यक्तियों के लिए मानसिक व आध्यात्मिक स्वतन्त्रता भी आवश्यक है। यह स्वतन्त्रता उन्हें बौद्ध धर्म में प्राप्त हुई, जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व पर आधारित था। डॉ0 अम्बेडकर ने एक जातिविहीन समाज का लक्ष्य रखा और कहा कि विषम समाज रचना भावनाओं अथवा आदर्शों से समाप्त होने वाली नहीं है इसके लिए परिवर्तित मानसिकता और ठोस कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. *जाटव, डी0आर0 डॉ0 अम्बेडकर का समाज दर्शन, समता साहित्य सदन, जयपुर 1990 पृ0 66*
2. *सिंह, रामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2006, पृ0 92*
3. *वही, पृ0 92–93*
4. *अम्बेडकर, डॉ0 बाबा साहब, राइटिंग्स एंड स्पीचेज खंड 3 1987 पृ0 39*
5. *चा° वाण शेषराव, भारतीय संविधान के निर्माता : मिथक और यथार्थ (अनु0) नई दिल्ली अटलांटिक पब्लिकेशन्स पृ0 9*
6. *जाटव, डी0आर0, डॉ0 अंबेडकर का समाज दर्शन, वही पृ0 71*
7. *अम्बेडकर बाबा साहेब संपूर्ण वाङ्मय खण्ड 35, डॉ0 अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, पृ0 2*
8. *ड्रेज जीन, डॉ0 अंबेडकर एंड द फ्यूचर ऑफ इंडियन डेमोक्रेसी 2005*

   http://econdse.org

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-121-128

विचलन और अपराध : समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*डॉ० रागिनी त्रिपाठी**

हम किसी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं जिसके कि सदस्य सर्वथा नियमों का पालन करते हों अथवा नियमों का पालन नहीं करते हों। नियमों का पालन अनुरूपता कहा जाता है और नियमों से हटना विचलन कहा जाता है। यह जरूर सही है कि प्रत्येक विचलन के प्रति समाज की प्रतिक्रिया भी समान नहीं होती है। विचलन के कारण जो समाज की सामूहिक भावना को ठेस पहुंचती है उसपर मरहम लगाने का कार्य दण्ड करता है।

यह विचलन और दण्ड के प्रति प्रकार्यात्मक चिंतन है। यही कारण है कि दुर्खीम ने जब एनोमी या विसंगति की चर्चा की है तो यह बताया है कि जब समाज यांत्रिक एकता से सावयवी एकता में परिवर्तित होता है तो एक संक्रमण के तौर पर विसंगति समाज में उत्पन्न होती है। मर्टन ने भी सांस्कृतिक लक्ष्य और साधन के सामंजस्य को महत्व दिया है। अगर सांस्कृतिक लक्ष्य और साधन में सामंजस्य नहीं है तो वह स्थिति विविध तरह के प्रत्युत्तर को जन्म देती है, इसे समझना ही होगा।[1] इसकी चर्चा इसी आलेख में आगे भी की गयी है।

प्रत्येक समाज में ऐसे व्यक्ति और समूह विद्यमान होते हैं जो सामाजिक आदर्शों का अनुपालन ही नहीं करते। भारत में सरकार द्वारा प्रतवर्ष चोरी, डकैती, आत्महत्या, नशाखोरी, जुआ, बलात्कार आदि में सम्बन्ध में आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। यदि समाज के सदस्यों पर किसी प्रकार का नियम लागू न किया जाय तो प्रत्येक सदस्य का व्यवहार भिन्न होगा। परिणाम यह होगा कि सारे समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी और समाज के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो जाएगा। राज्य ने अपने कुछ नियम व कानून बनाए हैं जिसका उल्लंघन करने पर प्रत्येक सदस्य को जेल, मुकदमा, दण्ड, क्षति या मुआवजा आदि की व्यवस्था कर रखी है तो कहीं पर धार्मिक संस्थाएँ अपने सदस्यों पर धर्म निष्कासन, प्रायश्चित, अधिकारों से वंचित करना अथवा ईश्वरीय प्रकोप के भय की व्यवस्था कर अपने नियमों का पालन करवाती है। यदि किसी समिति का सदस्य विपथगामी व्यवहार करता है तो उसे समिति की सदस्यता से वंचित कर दिया जाता है।[2] परिवार में रहने वाला सदस्य यदि परिवार के मानदण्डों का उल्लंघन करता है तो उसे माता–पिता के द्वारा संपत्ति से वंचित कर दिया जाता है। इन बातों को रखने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अगर समाज में रहता है तो समाज के द्वारा बनाए गए नियमों का पालन उसे करना पड़ेगा, उनका उल्लंघन करने

* *436/457–सी, बी.एच.एस. अल्लापुर, प्रयागराज (उ०प्र०)*

पर वह समाज के द्वारा दण्डित किया जाएगा। विचलन उतना ही पुराना है जितना कि मानव समाज। प्रत्येक युग में विचलन होता रहा है और समाज उसके रोकथाम की व्यवस्था करता रहा है।

लाईट एवं कैलर के अनुसार – *विचलन एक आवरणपूर्ण शब्द है जो प्रतिभा तथा साधुता से लेकर अपराध एवं पागलपन, विद्रोह तथा सनकीपन सभी कुछ को आच्छादित कर लेता है। वास्तव में कोई भी व्यवहार, जो सामाजिक प्रत्याशाओं का उल्लंधन करता है विचलित व्यवहार के रूप में चिह्नित किया जाता है।*[3]

विचलन के प्रकार

विचलन के प्रकारों के संबंध में सबसे सरल वर्गीकरण इ0एम0 लैमर्ट ने किया। उनके अनुसार प्राथमिक विचलन एवं द्वितीयक विचलन दो सामान्य प्रकार हो सकते हैं। प्राथमिक विचलन वह है जिसमें सरल नियमों का उल्लंघन होता है इसमें दण्ड नहीं मिलता है अथवा हल्की अस्वीकृति होती है। उल्लंघनकारी भी इसे साधारण समझता है। द्वितीयक विचलन गंभीर नियमों का उल्लंघन है। इसमें उल्लंघनकारी भी इसे गंभीर मानता है। इसमें अनिवार्य रूप से गंभीर दण्ड मिलता है जैसे उत्तर भारत में अपनी जाति से बाहर विवाह करना।

आर0 के0 मर्टन ने इस संबंध में कहा कि अमेरिका में सफलता प्राप्त करने के पाँच उपाय हैं। इनमें एक तो समाज सम्मत अथवा अनुरूपी है और शेष चार विचलन हैं। मर्टन के अनुसार – प्रत्येक समाज के सांस्कृतिक लक्ष्य तय होते हैं। उन्हें पूरा करने का एक संस्थात्मक उपाय होता है। संरचना के कारण सभी लोग इन दोनों में तारतम्य नहीं बिठा पाते हैं। इसलिए विचलन होता है।

मर्टन ने विचलन के चार प्रकार बताए एवं इनका एक क्रम भी बना दिया। उन्होंने कहा कि बगावल एक ऐसा विचलन है जिसमें वैकल्पित लक्ष्म होते हैं। प्रथम प्रकार का विचलन नवाचार है, जिसमें विचलनकारी व्यक्ति अथवा समूह लक्ष्य को स्वीकार करता है, इसे पाना चाहता है परन्तु संस्थात्मक उपायण नहीं अपनाता है, जैसे कोई अपराधी तो बनना चाहे परन्तु इसके लिए परीक्षा की तैयारी न करे, बल्कि अन्य उपाय करे। दूसरा विचलन कर्मकांड अथवा रस्म अदायगी का है। इसमें लक्ष्य प्राप्ति पर जोर या आग्रह नहीं होता है परन्तु उपाय किए जाते हैं। मर्टन ने धर्म को विचलन कहा है। इसी प्रकार नौकरशाही सभी तरीके अपनाता है परन्तु लक्ष्य पूरे हों, इसकी चिंता उसे नहीं रहती है। तीसरा प्रकार पलायनवाद है। इसमें व्यक्ति अथवा समूह न तो लक्ष्य को मानता है और न ही संस्थात्मक उपाय को। वह जिंदगी से भागता है। मसलन किसी का साधु

या फकीर बन जाना। चौथे प्रकार का विचलन बगावत है, जिसमें व्यक्ति अथवा समूह न तो प्रचलित सांस्कृतिक लक्ष्यों को मानता है और न ही संस्थात्मक उपायों को मानता है, परन्तु वह लक्ष्य भी वैकल्पिक अपना लेता है और संस्थात्मक उपाय भी दूसरे अपना लेता है। मर्टन ने इन प्रकारों को एक रेखाचित्र के द्वारा प्रस्तुत किया है –

सांस्कृतिक	लक्ष्य	संस्थात्मक उपाय
1. नवाचार	+	–
2. कर्मकांड	–	+
3. पलायनवाद	–	–
4. बगावत	+/–	+/–

बाल दुराचार विचलन के अन्य प्रकार भी हैं। इनमें एक बाल दुष्कर्म अथवा दुराचार है। सामान्य अखबारी भाषा में दुष्कर्म अथवा दुराचार शब्द का अर्थ यौन कुकृत्य होता है। इसका उपयोग बाल दुष्कर्म के लिए होना चाहिए। बालक या बालिका 7 वर्ष से 16 वर्ष एवं 18 वर्ष तक अपराध नहीं करते हैं। 1986 में जो बाल न्याय अधिनियम बना एवं जिसे 02 अक्टूबर, 1987 को लागू किया गया, उसके अनुसार इस उम्र के बच्चे दुष्कर्म करते हैं तो अपराध नहीं। वास्तव में सात वर्ष से कम का बच्चा या बच्ची किसी को गोली मार दे या छूरा भोंक दे तब वह न तो दुष्कर्म है न अपराध है, वह विचलन जरूर है। बच्चों का स्कूल से भागकर सिनेमाघर में लाइन लगाना अथवा इमली तोड़ना पलायनशीलता है, इसे विचलन की श्रेणी में भी रखते हैं।[4]

अपराध

अपराध मानव व्यवहार है लेकिन सभी प्रकार के मानव व्यवहार अपराध नहीं हैं। सिर्फ वही मानव व्यवहार अपराध हैं जो सामाजिक मूल्यों के प्रतिकूल होते हैं और जिनसे समाज को हानि होती है। मनुष्य के इस प्रकार के व्यवहार जिनका सम्बंध अपराध से है सार्वभौमिक है। हर एक समाज में अपराध और अपराधी पाए जाते हैं, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित। अपराध मृत्यु और बीमारी की भाँति हर काल और समाज में पाए जाते हैं। आदिम समाजों में अपराध को टॉर्ट (Tort) के नाम से पुकारा जाता है।

मानव विकास करता गया। राज्य नामक संस्थाका विकास हुआ। राज्य नामक संस्था के विकास का आधार था – 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम

कल्याण।' इसी को ध्यान में रखकर कानूनों का निर्माण किया गया। अब राज्य की सार्वभौमिकता, कानून और न्याय का उल्लंघन 'अपराध' कहा गया। [5]

अपराध के अर्थ को हम सरल शब्दों में कह सकते हैं अपराध अपराधी कानून का उल्लंघन है। चाहे कोई कार्य कितना भी अनैतिक अथवा गलत क्यों न हो किन्तु वह कार्य तब तक अपराध नहीं कहलाता जब तक अपराधी कानून में उसे अपराध न माना गया हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कानून का उल्लंघन अपराध कहलाता है। कानूनी दृष्टि से अपराध वह कार्य है जो सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक होता है।[6] अपराध अंग्रेजी के शब्द 'क्राइम' का हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी शब्दकोश में क्राइम के जो पर्याय दिए गए हैं, वे इस प्रकार है – अपराध, जुर्म, कसूर, दोष, अपकृत्य, पातक, पाप, गुनाह। अंग्रेजी का क्राइम शब्द लैटिन भाषा के 'क्रिमेन' शब्द से बना है जिसका अर्थ है – विलगाव। साधारण बोलचाल की भाषा में अपराध एक ऐसा कार्य है जो व्यक्ति का सामाजिक विलगाव (अलगाव) उत्पन्न करता है, दूसरे शब्दों में जिसे समाज स्वीकार नहीं करता है।[7] टप्पन के अनुसार – *''अपराध कानून संहिता के उल्लंघन में जानबूझकर किया गया व्यवहार है जो बिना किसी प्रतिरक्षा या औचित्य के किया गया है और जो राज्य द्वारा दण्डनीय है।'*[8]

अपराध की सामाजिक व्याख्या

अपराध के लिए कौन जिम्मेदार है? इस प्रश्न के सामान्यतया दो उत्तर दिए जाते हैं – 1. अपराध के लिए व्यक्ति उत्तरदायी है, तथा 2. अपराध के लिए समाज उत्तरदायी है। अपराध की सामाजिक व्याख्या इस बात पर आधारित है कि 'समाज अपराध के लिए उत्तरदायी है।'

अपराध की सामाजिक व्याख्या सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं और रूढ़ियों से सम्बंधित है। समाज के कुछ मूल्य होते हैं। इन मूल्यों का उद्देश्य समाज का कल्याण करना होता है। इन मूल्यों को अच्छी तरह से सम्पन्न करने के लिए कुछ विधान होते हैं। कभी–कभी व्यक्ति जानबूझकर इन मूल्यों की उपेक्षा करता है और कभी–कभी परिस्थितियाँ ऐसा करने के लिए बाध्य करती हैं। मूल्यों की रक्षा करने के लिए अनेक प्रथाओं और परंपराओं का विकास होता है। इन्हीं प्रथाओं और परंपराओं का उल्लंघन अपराध कहलाता है। अपराध को रोकने के लिए सामाजिक निन्दा के रूप में दण्ड भी दिया जाता है, जैसे समाज से अलग कर देना, पानी और भोजन नहीं करना आदि।

ब्राउन के अनुसार – *''अपराध उन प्रचलित रीतियों को तोड़ना है जो दण्ड की अभिमति के अभ्यास को जन्म देती हैं।''* [9]

हेज ने अपने वर्गीकरण को तीन भागों में बाटा है – व्यवस्था के विरूद्ध अपराध, सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध, व्यक्ति के विरूद्ध अपराध। ठीक इसी प्रकार बोंगर ने अपराध की प्रकृति के आधार पर अपराध को चार श्रेणियों में विभाजित किया – आर्थिक अपराध, यौन अपराध, राजनीतिक अपराध, विविध अपराध।[10]

अपराध की तरह अपराधियों का भी वर्गीकरण किया गया। अपराधियों के वर्गीकरण में सदरलैण्ड का प्रमुख स्थान है। निम्नवर्ग के अपराधी, श्वेतवस्त्रधारी अपराधी। और भी कई प्रकार से अपराधियों का वर्गीकरण किया गया, जैसे – लिंग अथवा आयु के आधार पर, हिंसात्मक एवं वैयक्तिक अपराध, सम्पत्ति का अपराधी, व्यवसायिक (सफेदपोश) अपराधी, संगठित अपराधी, पेशेवर अपराधी व्यक्ति समाज के द्वारा बनाए गए नियम, कानून को तोड़कर सामान्य से असामान्य व्यवहार करता है जिसके लिए एक कारक उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि अपराध अनेक प्रकार के होते हैं और इसीलिए इनके कारक भी अनेक हैं।

1. **अपराध के लिए जैविक कारक** – इसके अन्तर्गत आयु, लिंग, शारीरिक दोष, प्रजाति तथा जन्मस्थान, वंशानुक्रमण आते हैं।

2. **अपराध के मनोवैज्ञानिक कारक** – इसके अन्तर्गत मानसिक कमी, मानसिक रोग, संवेगात्मक अस्थिरता और संघर्ष, चरित्रहीनता आदि हैं।

3. **अपराध के पारिवारिक कारक** – इसके अन्तर्गत वैवाहिक स्तर, टूटे या भग्न परिवार, परिवारिक अनुशासन का अभाव आदि हैं।

4. **अपराध के आर्थिक कारक** – इसके अन्तर्गत आर्थिक स्थिति, व्यापारिक स्थिति, कम मजदूरी और बेरोजगारी, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण, व्यवसायिक मनोरंजन, निर्धनता आदि आते हैं।

5. **सामाजिक कारक** – इसके अन्तर्गत सामाजिक कुरीतियाँ, सांस्कृतिक संघर्ष, चलचित्र, सामाजिक धारणाएँ तथा मूल्य, सामाजिक विघटन, गन्दी बस्तियाँ, शिक्षा और दूषित कारावास व्यवस्था को अपराध के कारकों के लिए उत्तरदायी बताया गया है। बढ़ते हुए अपराधों को देखते हुए हम उदाहरण के तौर पर समकालीन भारत में अपराध एवं अपराधियों का परिवर्तनशील पार्श्वचित्र देखने को मिलता है जो इस प्रकार है –

- अपराध में पर्याप्त गत्यात्मकता पाई जाती है. अर्थात अपराध का कोई सर्वमान्य रूप नहीं है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपराध की अवधारणा परिवर्तनशील है तथा जैसे ही समाज की मान्यताओं, मूल्यों, मापदण्डों एवं कानूनों में परिवर्तन हो जाता है, वैसे ही अपराध की अवधारणा भी परिवर्तित हो जाती है।

● अपराध की भाँति अपराधियों की प्रकृति में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। पहले यह माना जाता था कि अपराधी जन्मजात होते हैं अर्थात् जन्म से ही उनमें इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ हस्तान्तरित हो जाती हैं जो उन्हें अपराधी व्यवहार करने के लिए विवश कर देती हैं। आज अपराधियों के निम्न वर्ग से सम्बन्धित होने सम्बन्धी धारणा में भी परिवर्तन हुआ है। आधुनिक युग में पेशेवर एवं संगठित अपराधियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। अपराधियों के परिवर्तनशील पार्श्वचित्र के बारे में एक अत्यन्त उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आज अपराधी–राजनेता एवं अपराधी–पुलिस गठजोड़ बढ़ता जा रहा है।

● पेशेवर अपराधी,वह अपराधी है जिसने अपराध करना अपना पेशा बना लिया है तथा वह इसी के द्वारा अपना जीवन–निर्वाह करता है।

● एक ओर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति ने विश्व को जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है,तो दूसरी ओर इससे अपराध के क्षेत्र में नवीन प्रकार के अपराधों का जन्म हुआ है। सायबर क्राइम का सम्बन्ध सूचना प्रौद्योगिकी के महत्त्वपूर्ण उपकरण–कम्प्यूटर द्वारा होने वाली सूचनाओं के आदान–प्रदान एवं व्यापारिक लेन–देन से है । इण्टरनेट, संचार के प्रमुख माध्यम के रूप में उभरा है । इस मुक्त प्रणाली में सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए आवश्यक है कि डिजिटल जानकारी किसी अनचाहे व्यक्ति के हाथ में पड़ने से बचाने के लिए सुरक्षा प्रणाली स्थापित हो । जनता में इस माध्यम के इस्तेमाल से व्यापार,संचार,मनोरंजन, सॉफ्टवेयर विकास करने के प्रति विश्वास ही जरूरी नहीं है, अपितु प्रशासन में भी पूरा विश्वास आवश्यक है ताकि वह इसका प्रभावशाली ढंग से दुरुपयोग रोक सके।[11] समकालीन अपराधों की संख्या में श्वेतवसन अपराध, आतंकवाद संबंधी अपराध, बाल अपराध वर्तमान समय में सबसे अधिक सायबर आपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है।

(1) कम्प्यूटर आधारित प्रलेखों के साथ हेर–फेर – इस प्रकार के सायबर अपराध में कोई व्यक्ति सचेत रूप से जान–बूझकर कम्प्यूटर में प्रयुक्त गुप्त कोड,कम्प्यूटर प्रोग्राम, कम्प्यूटर सिस्टम अथवा कम्प्यूटर नेटवर्क के साथ हेर–फेर या रद्दोबदल करता है या इनको नुकसान पहुँचाने का प्रयास करता है।

(2) कम्प्यूटर सिस्टम को अपने नियन्त्रण में लेना – इस प्रकार के सायबर अपराध में कोई व्यक्ति किसी सरकारी वैब साइट अथवा कम्प्यूटर सिस्टम को जान–बूझकर किसी माध्यम से अपने नियन्त्रण में ले लेता है तथा उसमें सुरक्षित सूचनाओं के साथ हेर–फेर करता है अथवा उन्हें समाप्त करने का प्रयास करता है। अनेक देशों में इस प्रकार के सायबर अपराधों की संख्या

में भी लगातार वृद्धि होती जा रही है।

(3) अश्लील सामग्री का प्रकाशन – इस प्रकार के सायबर अपराध में व्यक्ति ऐसी अश्लील सामग्री को इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों से संचारित करता है जिसका देखने वालों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे ऐसी सामग्री को दर्शकों को दिखाकर, पढ़ाकर अथवा अश्लील बातों को सुनाकर कानून द्वारा इस सन्दर्भ में लगाए गए प्रतिबन्धों को तोड़ने का प्रयास करते हैं।[12]

●अपराधों के बढ़ते क्रम में बाल अपराध अथवा किशोर अपराध आधुनिक युग की एक गम्भीर समस्या है। संसार के सभी देशों में बाल अपराधियों की बढ़ती हुई संख्या एक समस्या बनी हुई है। बाल अपराध कानून द्वारा निर्धारित निश्चित आयु से कम आयु वाले बच्चों द्वारा किया जाने वाला ऐसा अनुचित कार्य है जो समाज–विरोधी माना जाता है। अन्य शब्दों में निर्धारित आयु से कम बच्चों द्वारा कानून या सामाजिक मान्यताओं का उल्लंघन बाल अपराध कहा जाता है। अपराध तथा बाल अपराध दो भिन्न अवधारणाएँ हैं।

●बाल अपराध के उपचार के लिए परिवार, विद्यालय तथा शिक्षक,स्वस्थ मनोरंजन के साधनों में वृद्धि एवं सामुदायिक संगठन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भारत में बाल अपराध की रोकथाम से सम्बन्धित प्रमुख सुधारवादी संस्थाएँ इस प्रकार हैं– (1) बोर्टल स्कूल, (2) सुधार अथवा रिफॉर्मेटरी स्कूल, (3) बाल बन्दीगृह, (4) रिमाण्ड होम, (5) प्रमाणित स्कूल, (6) बाल सलाह केन्द्र, (7) बाल क्लब, (8) फोस्टर होम, (9) प्रोबेशन हॉस्टल, तथा (10) किशोर न्यायालय। भारत में बाल अपराध एक गम्भीर समस्या है।[13]

हमें यह भी समझना होगा कि अपराध और विचलन के प्रति समाज की धारणा स्थिर नहीं है। यह परिवर्तित होती रहती है। इसका कारण यह है कि समाज परिवर्तनशील है। समाज में प्रवास, तकनीकी प्रगति, विविध संस्कृतियों में सम्पर्क आदि के कारण मूल्यों की बहुलता आती है और समाज को उसके अनुसार स्वयं को परिवर्तित करना होता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो समाज की गत्यात्मकता नकारात्मक ढंग से प्रभावित होगी। समलैंगिकता, विवाहेत्तर सम्बन्ध, अनब्याही मां आदि के संदर्भ में जब हम कभी–कभी अदालतों के फैसले और टिप्पणी को देखते हैं तो उसे भी इसी आधार पर समझने का प्रयास करना चाहिए। अगर समकालीन दौर में साईबर क्राइम बढ रहे हैं तो इसका कारण तकनीकी प्रगति या परिवर्तन मात्र नहीं है इसका कारण यह भी है कि हमारे मूल्य किस तरह से परिवर्तित हो रहे हैं। यही कारण है कि आज नागरिक सेवाओं की परीक्षा में मूल्यों को काफी महत्व दिया जा रहा है और तकनीकी ढंग

से कैसे ज्यादा सुरक्षित ढंग से कार्य संभव हो सकता है, इ से भी महत्व दिया जा रहा है। विश्व के विविध संस्कृतियों में सम्पर्क, विकास के विविध आयाम और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर जो संगठन हैं, हित समूह हैं, दबाव समूह हैं उनका भी प्रभाव किसी देश के कानून पर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। इसे भी अपराध की समकालीन संदर्भ में चर्चा में हमें महत्व देना होगा। बौद्धिक और पेशेवर समूहों में इस तरह की चर्चा प्रायः होती है, जनसामान्य में प्रायः नहीं अथवा बहुत कम होती है। अतः अपराध और विचलन के प्रति किसी देश की क्या प्रतिक्रिया है, उसे सिर्फ स्थानीय स्तर पर नहीं समझा जा सकता हैं हम लेविट के उस कथन को विविध संदर्भों में प्रयोग कर सकते हैं कि स्थानीय स्तर पर व्यवहार और वैश्विक स्तर पर चिंतन थिंक ग्लोबल एक्ट लोकल। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में मुझें यह यकीन है कि प्रत्येक समाज परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अपने सदस्यों के हित में स्वयं को मूल्य, प्रतिमान, विचारधारा, प्रतीक आदि के स्तर पर समायोजित कर लेता है। अपराध और विचलन के प्रति भी समाज का ऐसा ही प्रत्युत्तर होता रहता है और रहेगा।

सन्दर्भ

1. *अब्राहमसन, मार्क (क्लासिकल थ्योरी, प्रेंटिस हॉल आफ इंडिया, दिल्ली, 2010पृ–141*
2. *महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश अपराध एवं समाज, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ–9*
3. *वही, पृ–9–10*
4. *हुसैन, मुजतबा प्रारम्भिक समाजशास्त्र, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007 पृ–213–214*
5. *बघेल, डी.एस. अपराधशास्त्र, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ–64*
6. *महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश पूर्व उदधृत, 2015 पृ–45*
7. *बघेल, डी.एस. अपराधशास्त्र, पूर्व उदधृत, 2003 पृ–65*
8. *महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश 2015, पूर्व उदधृत, पृ–45*
9. *बघेल, डी.एस. अपराधशास्त्र, पूर्व उदधृत, 2003 पृ–67*
10. *महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश , पूर्व उदधृत, 2015 पृ–54–63*
11. *वही–40–41*
12. *वही, पृ–238*
13. *वही, पृ–125–126*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-129-133

भारतीय किन्नरों की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

*राजेश कुमार**

लिंग के आधार पर मानव दो वर्गों स्त्री एवम् पुरूष के रूप में जाना जाता है, इन्हीं दो वर्गों के साथ–साथ एक ऐसा वर्ग है जो कि एक अन्य लिंग अर्थात तृतीय लिंग के रूप में भी जाना जाता है। सामान्य रूप से ऐसे मानव के लिए ''किन्नर'' अथवा ''हिजड़ा'' शब्द प्रयोग किया जाता है। ये एक ऐसा समुदाय है जो लैंगिक रूप से न तो पूर्णतः स्त्री होते हैं और न ही पूर्णतः पुरूष। कुछ विशिष्टताओं के कारण (अंगों एवं गुण सूत्रों) का एक निश्चित अनुपात मे विकास न हो पाने के परिणामस्वरूप ये लोग सामान्यतः स्त्री एवम् पुरूष की भांति न तो सम्भोग कर सकते हैं और न ही गर्भ धारण कर सकते हैं। भारत में प्रचलित विभिन्न भाषाओं में किन्नरों के लिए भिन्न–भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में छक्का, खोजा, किन्नर, नपुंसक, हिजड़ा, Third Gender, Trans Gender इत्यादि शब्दों से इन्हें सम्बोधित किया जाता है।[1]

भारत में प्राचीन काल से किन्नर को तृतीय प्रकृति अथवा ''नपुंसक'' मानव के रूप में संबोधित किया जाता रहा है। प्राचीन काल से ही मनुष्य की प्रकृति पर विभिन्न विद्वानों ने विचार किया है। वैसे तो ''किन्नर शब्द'' आधुनिक 'किन्नौर' क्षेत्र में प्राचीन काल से ही निवास करने वाली विशेष जनजाति के लिए प्रयुक्त होता आया है। प्राचीन काल से ही संस्कृत के विभिन्न प्राचीन ग्रंन्थों में लिंग सम्बन्धी ज्ञान पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन भाषाविद पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' के खिल भाग में लिंगानुशासन के अवलोकन से प्राप्त होता है, जिसमें कि स्त्री–पुरूष एवं किन्नर अथवा नपुंसक के भेद को व्याख्यायित किया गया है–

स्तन केशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरूषः स्मतः
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्।

अर्थात् स्तन केश वाली को जहां स्त्री वहीं रोंये वाला को पुरूष कहा जाता है। जिनमें इन दोनों विभिन्नताओं का अभाव पाया जाता है उसे नपुंसक या हिजड़ा कहा जाता है।[2]

इसी प्रकार किन्नर अथवा नपुंसक का प्रथक्करण जैन एवम् बौद्ध साहित्य में भी किया गया है। जैन दर्शन में मनुष्य की आत्मा को बद्ध करने वाले नौ

**शोध छात्र (समाजशास्त्र) श्री महंथ रामाश्रयदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भुरकुड़ा, गाजीपुर, उ.प्र. (वीर बहादुर सिंह पूर्वाच्ल जौनपुर विश्वविद्याय उ०प्र०)*

कषायों अर्थात नौ दुष्प्रवत्तियों के उल्लेख अनुसार जहाँ कर्म को 'स्त्री वेद', 'पुरूष वेद' तथा 'नपुंसक वेद' के रूप में उल्लेख किया गया है। नपुंसक वेद अर्थात् 'स्त्री और पुरूष' दोनों के साथ भोग की अभिलाषा उत्पन्न करने वाले 'मोहनीय कर्म 'जिसके उदय होने पर पुरूष में किसी स्त्री के अतिरिक्त बालक अथवा पुरूष के साथ भी सम्भोग करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है। जिसमें गर्भ धारण होता है उसे स्त्री कहते हैं तथा जो पुरू अर्थात श्रेष्ठ को जन्म देता है उसे पुरूष कहते हैं तथा जो न स्त्री हो और न ही पुरूष हो उसे 'नपुंसक' कहते हैं, अर्थात जैन दर्शन मैं स्त्री एवम पुरूष मनोभावों के साथ–साथ अन्य एक तृतीय मनोभाव का भी उल्लेख नपुंसक के रूप किया जाता है। जैन दर्शन स्त्री एवम पुरूष के सम्मिलित मनोभावों को व्यक्त करने वाले लिंग को नपुंसक के रूप में स्वीकार करता है। अतः कहा गया है कि गीतिरतयः किन्नरः अर्थात गान में रति करने वाले किन्नर कहलाते है।[3]

भारत के प्राचीन ग्रंथों में सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके विकास की प्रक्रिया का व्यापक उल्लेख दृष्टिगोचर होता है जिसमें स्त्री– पुरूष की उत्पत्ति के साथ–साथ इस तृतीय लिंगीय मानव के उत्पत्ति के सन्दर्भ में भिन्न–भिन्न अवधारणाएं प्राप्त होती हैं इसके सम्बन्ध में बताया गया है कि–

शुक्राधिकेषु पुरूष, रक्ताधिका कन्यका,
समशुक्र रक्ताभ्यां नपुंसकः।

अर्थात् यदि सम्भोग के दौरान गर्भाशय में पिता का वीर्य अधिक सिंचित हो जाता है, तो पुरूष शरीर उत्पन्न हो जाता है और यदि माता का रज अधिक सिंचित हो जाता है, तो कन्या शरीर की उत्पत्ति होती है। माता–पिता के वीर्य एवं रज की मात्रा समान होने पर 'नपुंसक' संतान की उत्पत्ति होती है। किन्नरों की उत्पत्ति के सम्बंध में यह भी कथन प्रचलित है कि ब्रह्मा जी की छाया से किन्नरों की उत्पत्ति हुई है।

बाल्मीकि कृत रामायण व रामचरितमानस में किन्नरों के प्रमाण मिलते हैं। बाल्मीकि कृत रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित प्रजापतिकर्दम के पुत्र इल की कथा के माध्यम से किन्नरों के उत्पत्ति के प्रमाण प्राप्त होते है। राजा कर्दम का पुत्र अपने सैनिकों के साथ शिकार करते–करते राजा 'इल' उस पर्वत पर पहुँचता है जहाँ भगवान शिव अपनी पत्नी पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। भगवान शिव पार्वती को प्रसन्न करने के उद्देश्य उस समय स्त्री का रूप धारण किए हुए थे जिसके प्रभावस्वरूप वहां पर उपस्थिति राजा 'इल' एवं उसके समस्त सैनिक सहित सभी जीव–जन्तु स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गए। स्त्री का रूप

धारण किए हुए 'इल' ने भगवान शिव से पुनः पुरूष प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। भगवान शिव ने 'इल' को पुरूषत्व प्रदान करने से इन्कार कर दिया, किन्तु पार्वती ने 'इल' के अनुनय विनय से प्रभावित होकर एक माह स्त्री, एवं एक माह पुरूष के रूप में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने का वरदान प्रदान कर दिया। इसी वरदान के अनुरूप एक माह सुन्दर स्त्री 'इला' और एक माह राजा 'इल' के रूप में जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन सुन्दरी 'इला' को पर्वत पर विचरण करते हुए चन्द्रमा के पुत्र भगवान बुध ने देखा, उनकी संपूर्ण कथा का श्रवण कर भगवान बुध ने देवयोनि विशेष होने का वर प्रदान किया तथा साथ ही श्वेत पर्वत पर निवास करने हेतु आमंत्रित किया।[4] सनातन धर्म में तीसरी योनि किन्नर के नाम से जानी जाती है, किन्नरों में नेगेटिव ऊर्जा को निष्क्रिय करने की शक्ति ईश्वर को प्रदान की है। मूलतः इन्हें शिव शक्ति का ही फल माना जाता है।

विभिन्न ग्रंथों में किन्नरों का वर्णन आता है ये पूर्ण रूप से न मर्द होते हैं और न ही नारी बन पाते हैं। ये प्रत्येक मांगलिक उत्सवों में सम्मिलित होकर दुआएँ देते हैं और बदले में नेग प्राप्त करते हैं। किन्नरों के द्वारा दी जाने वाली दुआएँ पवित्र मानी जाती हैं, वहीं इनकी बद्दुआ बुरी मानी जाती हैं, जिससे लोग बचने का प्रयास करते हैं।[5] किन्नरों का रहन–सहन मनुष्य से विपरीत या जुदा होता है। प्राचीन काल में किन्नर राजा महाराजाओं के यहां नाचने गाने का कार्य करते थे जिससे उनकी आजीविका चलती थी। किन्नर अपने आराध्य देव से वर्ष में एक बार विवाह करते हैं। प्राचीन मान्यताओं के अनुसार शिखंडी को किन्नर माना गया है। शिखंडी के कारण ही अर्जुन ने भीष्मपितामह को युद्ध में हरा दिया था।[(6)] प्रत्येक किन्नर को किन्नर समाज में सम्मिलित करने के लिए उनके कुछ रीतिरिवाज होते हैं जिनका उन्हें पालन करना होता है। नए किन्नर समुदाय में सम्मिलित करते समय नृत्य गाना और सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है। किसी किन्नर की मृत्यु होने पर उसे किसी को नहीं दिखाया जाता है ऐसी मान्यता है कि उसे यदि किसी ने देख लिया तो फिर जन्म किन्नर के रूप में लेना पड़ेगा। किन्नरों पर निजी विधेयकः– The rights of Transgendes persons 2014 जो किन्नरों के अधिकारों की बात करता है। 24 अप्रैल 2015 को माननीय सांसद सदस्य तिरूचि शिवा (द्रविड़ मुनेत्र कड़गम) ने 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति के लिए निजी बिल लाकर इतिहास रच दिया। लम्बी बहस के बाद बिल ध्वनिमत के लिए रखा गया जो कि राज्यसभा द्वारा सर्वसम्मति से पास हो गया। तिरूचि शिवा भारत के संसद सदस्य हैं जो कि राज्यसभा में तमिलनाडु का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पार्टी से हैं और इन्हें 1996, 2002, 2007 एवं 2020 में चुना गया वह वक्ता और लेखक भी हैं। एक छात्र के रूप

में सन् 1976 के आपातकाल में 'आंतरिक सुरक्षा अधिनियम' (Maintenance of Internal Security Act, MISA) के दौरान वह जेल में थे पार्टी आधिकारिक अंग मुराजोली और अन्य पत्रिका के लिए लेख भी लिखे। आपने किन्नरों के अधिकार सम्बन्धी बिल को लाकर ख्याति प्राप्त किया है।[7]

किन्नरों की स्थिति

अप्रैल 2014 में सुप्रीमकोर्ट में किन्नरों को तृतीय लिंग की पहचान दी है। नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी (NALSA) अर्जी पर यह फैसला सुनाया गया है। इस फैसले के ही परिणाम स्वरूप प्रत्येक किन्नर को जन्म प्रमाणपत्र, राशनकार्ड, पासपोर्ट और ड्राइविंग लाइसेंस में तीसरे लिंग के रूप में पहचान प्राप्त करने का अधिकार मिला। इसका तात्पर्य यह है कि किन्नरों को एक दूसरे से शादी करने का अधिकार प्राप्त हो गया। किन्नरों को उत्तराधिकार प्रदान कर दिया गया है। सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के उद्देश्य से किन्नरों के लिए शिक्षा तथा रोजगार में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। किन्नरों के स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं क्रम में (एच.आई.वी.) सीरो सर्विलांस केन्द्रों की व्यवस्था की गई है। किन्नरों की बेहतरी के लिए सरकारें सामाजिक कल्याण योजनाएँ बनाए, उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा की पहचान दिलाने हेतु समुचित कदम उठाएँ। किन्नरों को मुख्य धारा में लाने के लिए राज्य सरकारों ने सराहनीय प्रयास किए हैं। किन्नरों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग के गठन की बात की गई है, जिसमें तमिलनाडु सरकार के विशेष सराहनीय प्रयास रहे हैं किन्नरों के कल्याणार्थ तमिलनाडु, केरल तथा पश्चिम बंगाल सरकारों ने वेलफेयर बोर्ड गठित किए हैं, लेकिन सभी किन्नरों को समाज की मुख्यधारा में लाने हेतु अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय आयोग के गठन की आवश्यकता है। ट्रांसजेंडर पर्सन्स (Protection of Rights½ provision 2016 द्वारा किन्नरों को जोड़ने का प्रयास जारी है। इसके अतिरिक्त वर्ष 2016 में उज्जैन के महाकुम्भ में थर्डजेंडर सम्प्रदाय के लिए अलग स्थान निर्धारित किया गया, जहाँ लाखों श्रद्धालुओं ने उनसे दुआएं व आशीर्वाद प्राप्त कर उनके प्रति मानवता एवम् आस्था से उन्हें स्वीकार करने का सूत्रपात किया।

अभी वर्ष 2019 में प्रयागराज में सम्पन्न हुए अर्द्धकुंभ के दौरान पहलीबार किन्नर अखाड़े को भी मान्यता देकर उसे अन्य अखाड़ों की भांति सम्मान किया गया जो कि सबसे बड़े शैव अखाड़े श्री पंचदशनाम जूना अखाड़े ने लिखित समझौते के अन्तर्गत किन्नर अखाड़े को मान्यता दी। किन्नर अखाड़े की महामंडलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी हैं। जूना अखाड़े के महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानन्द गिरि ने किन्नर अखाड़े को जूना अखाड़े का अभिन्न अंग घोषित

किया और इसकी महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है कि ''जिनके दर्शन मात्र से दरिद्रता के सारे विकार दूर हो जाते हैं उसे अपने से कौन दूर करना चाहेगा।[9]

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन तृतीय लिंगीय समुदाय की उत्पत्ति समाज द्वारा ही हुई है तथा समाज द्वारा प्रदत्त सभी मूलभूत सुविधाओं पर भी इनका समान अधिकार है, परन्तु आज भी समाज इन्हें अपना हिस्सा नही मानता है। समाज बस उनकी आवाज व तालियों तक ही सीमित है। समाज के लिए वे केवल एक विषय हैं न कि विशेष। लैंगिक विषमता के कारण आज भी किन्नर समाज जीवकोपार्जन के लिए नाचने गाने जैसे कार्यों से अपना जीवकोपार्जन कर रहे हैं और शारीरिक शोषण का शिकार हो रहे हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र की आवश्यकता इसलिए अत्यधिक है क्योंकि देश में किन्नर समाज को तृतीय लिंग के रूप में मान्यता प्रदान किए कई वर्ष बीत गए हैं, किन्तु उनमें सामाजिक समता के रूप में कोई परिवर्तन होता नही दृष्टिगोचर हो रहा है। किन्नरों के विकास व सशक्तिकरण से संबंधित कई कानून व योजनाओं के निर्धारण के बाद भी इनकी स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ है। व्यवहारिक रूप से इनका जीवन आज भी चुनौतियों से भरा हुआ है। आज भी समाज का इनके प्रति उदासीन भरा व्यवहार देखने को मिलता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन में किन्नर समाज की वस्तुस्थिति ज्ञात करने का पूरा प्रयास किया जाएगा।

संदर्भ

1. *डॉ. पुनीत विसारिया, विमर्श का तीसरा पक्ष, सं. डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह, रविकुमार गोड़ अनम प्रकाशन नई दिल्ली–53 संस्मरण 2006 पृ.सं. 54*
2. *भारतीय पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ. शांति स्वरूप गुप्त–पृ.सं. 316*
3. *जैन कोष धावला 13/5, 5, 140/08*
4. *वाल्मीकि कृत रामायण 99वां सर्ग*
5. *हुं. हिजड़ो .....हुं लक्ष्मी (अनुवाद किशोर गौड़), गंगावा परिवार प्रकाशन आवृत्ति 2015 पृ.सं.138*
6. *महाभारत सभा पर्व 41.17.33*
7. *https://en.m.wilkipediya.org Shri Tiruchi Shiva M.P.GMEIPMRND 3780RS (53) 18/12/2014*
8. *National Legal Service Authority Petitioner Versus union of India and others respondents (Suprem Court of India 15 April 2014)*
9. *कुंभ विशेषांक किन्नर अखाड़ा निशांत कुमार, वर्ष 3 अंक 3 जनवरी– मार्च मुंबई 2019 पृ.सं. 28 एवम् 29 – डॉ. सुलभाकोरे (राजभाषा) 30.04.2019.*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-134-139

प्रयागराज (इलाहाबाद) का संक्षिप्त इतिहास

*सिद्धार्थ सिंह**

प्रयाग' भारत की अति प्राचीन नगरी है। 'प्रयाग' का अर्थ है–प्र– प्रकृष्ट + याग– यज्ञ अर्थात् वह स्थान जहाँ विशेष रुप से यज्ञ किये गये हों। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के 21वें श्लोक में इसका नाम इस प्रकार आया है –

"हिम वद्विन्ध्ययोर्मध्ये, यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च, मध्यदेशः प्रकीर्तितः।"

अर्थात् हिमालय और विन्ध्याचल के बीच उस स्थान से पूर्व जहाँ सरस्वती नदी बालू में लोप हो जाती है और 'प्रयाग' के पश्चिम में जो देश है, उसको 'मध्यदेश' कहते हैं। वाल्मीकि रामायण में कुछ अधिक विस्तार के साथ प्रयाग का वर्णन मिलता है। उसके अयोध्याकाण्ड के 50 से लेकर 52 सर्ग तक में लिखा गया है कि जब श्रीरामचन्द्र को पिता के वनवास का आदेश मिला तो वह अयोध्या से चलकर श्रृंगवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में गंगा के तट पर आये और उसी घाट से पार उतरकर 'वत्सदेश' में पहुँचे। यह वल्सदेश प्रयाग के पश्चिम के उस भू–भाग को समझना चाहिए, जो गंगा और यमुना के बीच में अब 'अन्तरवेद' और 'दोआब' कहलाता है। इसकी राजधानी 'कौशाम्बी' थी। 'महाभारत' के वनपर्व अध्याय 84 में प्रयाग और अध्याय 85 में प्रयाग तथा प्रतिष्ठानपुर (झूसी), वासकी (उसकी, नागबासू) और दशाश्वमेध (दारागंज) का वर्णन है। इसी पर्व के अध्याय 87 में लिखा है कि उसी पूर्व दिशा में पवित्र ऋषि सेवित, लोक–विख्यात गंगा और यमुना का उत्तम संगम है, जहाँ पहले भगवान ब्रहमा ने यज्ञ किया था। इसी से इसका नाम प्रयाग हुआ है। इसी प्रकार उद्योग पर्व अध्याय 144 तथा अनुशासन पर्व अध्याय 15 में प्रयाग का उल्लेख है। पुराणों में प्रयाग का विस्तार इस प्रकार वर्णन किया गया है।

शब्द कुंजी : इलाहाबाद, प्रयागराज, उल्लेख, मुगल, क्रान्ति, पुराण, अंग्रेज

"मत्स्य पुराण अध्याय 106 तथा 109 में प्रयाग–मण्डल का विस्तार 20 कोस बतलाया गया है। कुर्म पुराण उत्तरार्द्ध, अध्याय 36 में प्रयाग क्षेत्र का परिमाण 6 हजार धनुष है। इसी पुराण के 34 तथा 82 अध्यायों में प्रयाग नाम से ब्रहमा का क्षेत्र 5 योजन में फेला लिखा है। पद्म पुराण के स्वर्ग खण्ड अध्याय 57 में प्रयाग का क्षेत्र 5 योजन और 6 कोस बताया गया है। इसी पुराण में अध्याय 58 में प्रयाग क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई डेढ़ योजन लिखी है और उसमें

**शोध छात्र (इतिहास) डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज, आजमगढ़ (उ0प्र0)।*

6 किनारे बताये गये हैं।" प्रयाग का उल्लेख तन्त्र–ग्रन्थों में ही हुआ है। तान्त्रिकों के 64 पीठों में एक प्रयाग भी है, जिसकी अधिष्ठात्री ललिता देवी हैं। इनका मन्दिर नगर के दक्षिण यमुना तट की ओर मीरापुर में है। बंगदेशीय शाक्त इस स्थान का बड़ा महत्त्व मानते हैं और जब यहाँ आते हैं तब उक्त देवी का दर्शन अवश्य करते हैं। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश के 13वें सर्ग में प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम का दृश्य बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। लंका से लौटते समय श्रीरामचन्द्र पुष्पक वीमान पर सीता से कहते हैं –

"अब हम प्रयाग आ गये हैं। देखों, वह वही 'श्याम' नाम का वटवृक्ष है, जिसकी पूजा करके एक बार तुमने कुछ याचना की थी। यह इस समय खूब फल रहा है। चुन्नियों सहित पन्नों के ढेर की तरह चमक रहा है।" गोस्वामी तुलसीदास ने 'कवितावली' में लिखा है–

"सोहे सितासित को मिलबो, 'तुलसी' हुलसैहिय हेरि हिलोरे।"

मानो हरे–तृन चारु चरैं, बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे। अर्थात् यमुना की नीली धाराएँ, गंगा के श्वेत तंरगों में मिलकर इस तरह उनमें विलीन हो जाती हैं, जैसे इधर–उधर कामधेनु के, सफेद रंग के, छिटके हुए, बछड़े हरी–हरी घास चर रहे हों।

कालिदास की कुशल लेखनी ने गंगा औरन यमुना के श्वेत और नील जल के समावेश का जो सुन्दर चित्र खींचकर अनुपम उपमाओं द्वारा रंजित किया है, उसको विकराल काल की गति अब तक विकृत नहीं कर सकी। आज भी तीर्थराज में इन दोनों पवित्र नदियों के संगम का दृश्य, ठीक उसी रुप में विद्यमान है जिसके दर्शनों तथा उसमें स्नान के लिए हर साल लाखों की संख्या में, जन–समूह सुदूर देशों से आकर यहाँ एकत्र होता है।

भारत का इतिहास 1194 से 1800 तक मुस्लिम साम्राज्य का इतिहास रहा है। ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्त में उत्तर भारत में देशीय नरेशों की, दिल्ली और कन्नौज, यही दो बड़ी राजधानी थी, पर उनका जीवन रूपी दीपक एक ओर आपस में कलह और वैमनस्य, दूसरी ओर विदेशियों के ताबड़तोड़ चढ़ाइयों की आँधी से झिलमिला रहा था। इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि सन् 1994 में शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी ने एक–एक करके राज्यों को हस्तगत कर लिया और पूर्व में काशी तक अधिकार जमा लिया। उसी समय से प्रयाग भी पहले–पहल मुसलमानी राज्य के अन्तर्गत हुआ। महमूद गजनकी के दरबार में प्रसिद्ध विद्वान अलबेरूनी ने प्रयाग के अक्षयवट इत्यादि का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है।

मुगलकाल में आकर खासकर अकबर काल में प्रयाग का नाम बदलकर 'इलाहाबास' कर दिया गया। अकबर के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फ्रजल ने 'आईने अकबरी' में कोई सन् संवत् न देकर केवल इतना लिखा है कि, "यह स्थान प्राचीन काल से 'पयाग' (प्रयाग) कहलाता था। बादशाह ने इसका नाम 'इलाहाबास' रखा और यहाँ पत्थर का एक किला बनवाया, जिसमें अनेक सुन्दर महल बने हुए हैं।" 1628 में जहाँगीर के मरने पर खुर्रम 'शाहजहाँ' के नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ। इसी के समय से इस स्थान का नाम 'इलाहाबास' के स्थान में पक्के तौर पर 'इलाहाबाद' हुआ। यद्यपि शाहजहाँ के राज्यकाल में को विशेष उल्लेखनीय घटना प्रयाग में नहीं हुई। औरंगजेब के समय में फ्रांस का प्रसिद्ध यात्री टेवर्नियर भारत की सैर के लिए आया था। 6 दिसम्बर सन् 1665 को वह 'आलमचन्द्र से नाव द्वारा प्रयाग में पहुँचा। उसने यहाँ का तत्कालीन वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है –

"इलाहाबास (इलाहाबाद) एक बड़ा शहर है, जो गंगा और यमुना के संगम की नोक पर बसा हुआ है। यहाँ (किले में) तराशे हुए पत्थर का एक बहुत ही सुन्दर महल है, जिसके गिर्द दोहरी खाँई है। इस महल में सूबेदार रहता है, वह भारत के उच्च श्रेणी के अधिकारियों में है। कोई मनुष्य बिना सरकारी आज्ञा के गंगा या यमुना पार नहीं कर सकता। मुझे इसके लिए प्रातःकाल से दोपहर तक नाव की प्रतीक्षा करनी पड़ी। अन्त में एक डच डॉक्टर की कृपा से आज्ञापत्र मिला। यहाँ प्रत्येक लदी हुई नाव का चार रुपया महसूल लिया जाता है। किनारे पर एक दारोगा इस बात की जाँच करके लिखता है कि कहाँ कि प्रकार का माल जाता है।" सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हुई, उस समय से लेकर 1712 तक अब्दुल्ला खाँ प्रयाग का हाकिम रहा। उस समय उसका और उसके भाई हुसैन अली का दिल्ली दरबार में ऐसा रंग जमा हुआ था कि ये लोग 'बादशाह गर' कहलाते थे अर्थात् जिसको चाहते थे, बादशाह बनाते थे। औरंगजेब के बाद 'आलमशाह' तख्त पर बैठा। तब ये लोग उसके नौकर बने रहे, परन्तु जब आजम का भाई मुअज्जम उसको लड़ाई में मारकर 'बहादुरशाह' के नाम से बादशाह बना, तब ये लोग बहादुरशाह के बेटे अजीमुश्शन के पक्ष में हो गये, जो उस समय बंगाल का सूबेदार था। उसने अपनी ओर से इलाहाबाद का सूबा अब्दुल्ला को और बिहार उसके भाई हुसैन अली को दे दिया।

सन् 1720 के अप्रैल महीनें में राजा रत्नचन्द कुद सेना साथ लेकर प्रयाग आये यहाँ गिरिधर बहादुर से मिलकर उसको विश्वास दिलाया कि इस किले के बदले उसको अवध की सूबेदारी, राजा की पदवी के साथ मिलेगी जिसमें उसको हर प्रकार के पूरे अधिकार रहेंगे तथा 30 लाख रुपये नकद, मोतियों की माला,

जड़ाऊ खलअत् हाथी साहित बादशाह के दरबार से मिलेगा। गिरिधर ने इसको स्वीकार कर लिया और 11 मई 1720 को अपना कुल खजाना माल असबाब और बाल–बच्चों को लेकर किले से चला गया।

"सन् 1732 में यह सूबा सरबुलन्द खाँ को मिला। उसने अपनी ओर से रोशन खाँ को अपना नायब बनाकर भेजा, परन्तु सन् 1935 में फिर महम्मद खाँ यहाँ का सूबेदार हुआ। उस समय सर बुलन्द खाँ दिल्ली में था। उसने यह सुनकर अपने एक और नायब शाहनिवाज खाँ को लिखा कि वह महम्मद खाँ को कब्जा न दे। इधर भदोही और कंतित के राजा महम्मद खाँ की सहायता के लिए पहुँचे। शाहनिवाज उस समय सिंगरौर के किले में पहुँच गया था। वह कसौंधन (उपनाम लच्छागिर) के घाट से गंगा के इस पार उतरा, परन्तु यहाँ उसके पहले ही अरैल में उसके नायब सैयद महम्मद खाँ और राजा से लड़ाई छिड़ गयी थी, जिसमें पहले तो महम्मद खाँ हारा, फिर अन्त में राजा हारकर विजयपुर की ओर चला गया। इस घटना के पश्चात् कुछ दिनों तक यह सूबा महम्मद खाँ बंगश के ही अधिकार में रहा, परन्तु सन् 1936 में फिर सर बुलन्द खाँ को मिल गया।"

सन् 1749 में नवाब सफदर जंग की ओर से राजा नवल राय प्रयाग के आमिल नियुक्त हुए। उन्होंने नवाब की आज्ञानुसार फर्रुखाबाद के बंगश पठानों पर चढाई की। वहाँ के नवाब महम्मद खाँ बंगश की विधवा मालिया बेगम उपनाब बीबी साहिबा ने सन्धि के लिए प्रार्थना का। नवल राय ने 50 लाख पर मामला तय किया, परन्तु पीछे बीबी के साथियों ने यह रकम देना स्वीकार नहीं किया, इसपर नवल राय ने फर्रुखाबाद पहुँचकर वहाँ के किले पर कब्जा कर लिया और बीबी तथा उसकी माँ को उसके साथियों ने नवल राय से किसी तरह जोड़–तोड़ लगाकर छुड़ा लिया। उसके पीछे फर्रुकाबाद के पठान महम्मद खाँ को अपना सरदार बनाकर नवल राय के इलाके में लूट–पाट करने लगे। इसपर नवल राय अपनी सेना लेकर उन लोगों को दबाने के लिए आगे बढ़ा। खुदागंज में पहुँचकर लड़ाई छिड़ गयी। नवल राय हाथी पर सवार होकर अपनी सेना का संचालन कर रहा था और शत्रुओं पर स्वयं तीर चला रहा था। अन्त में उसी युद्ध में बड़ी वीरता के साथ काम आया। यह घटना सन् 1750 के अगस्त महीने के आरम्भ में हुई थी। प्रयाग के किले के निकट कीटगंज से मिला हुआ तालब नवल राय का महल्ला और फैजाबाद तथा उन्नाव जिले में 'नवल गंज' इन्हीं नवल राय के बसाये हुए बताये जाते हैं। सफदर जंग को नवल राय की मृत्यु का बड़ा शोक हुआ और उसने पठानों पर क्रोधित होकर प्रयाग के किले में महम्मद खाँ के पाँच बेटों को बड़ी निर्दयता से मरवा डाला।

अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए उसको (शुलाउद्दौला) सहायता नहीं मिली, तो वह भी अंत में लाचार होकर सन् 1765 में अंग्रेजों की शरण में आ गया। पिछली लड़ाई में 10–12 वर्ष के दो अंग्रेज बालक उसके हाथ लग गये थे, जिसको उसने बहुत सुख से रखा था। उन्होंने शुजाउद्दौला को विश्वास दिलाया कि यदि तुम हमें सुरक्षित कम्पनी के अधिकारियों के हवाले कर दोगे, तो अंग्रेज तुमको तुम्हारे सूबे पर फिर से बहाल कर देंगे। अतः वह उन लड़कों को इस अवसर पर अपने साथ प्रयाग लाया और उन्हें लार्ड क्लाइव को सौंप दिया, जो उस समय विशेष रुप से तथा इसीलिए यहाँ आया था। क्लाइव ने नवाब का बड़ा सत्कार किया और उसे उसके पुराने सूबे अवध और इलाहाबाद पर, सिवा उस भाग के जो 'शाह आलम' को दिया जा चुका था, फिर अधिकार दे दिया। 1767 में शुजाउद्दौला ने प्रयाग का किला, चुनार के किले के बदले में अंग्रेजों को दे दिया था। इससे ज्ञात होता है कि 1764 में जब पहले–पहले अंग्रेजों ने प्रयाग के किले को ले लिया, तो सन्धि होने पर पुनः शुजाउद्दौला को दे दिया होगा।

मई 1771 तक शाह आलम प्रयाग में रहा। बाद में उसे दिल्ली के तख्त पर बैठने की धुन समाई। अतः उसने अंग्रेजों की मर्जी के बगैर मराठों से सन्धि कर लिया, सन्धि में उसे 10 लाख रुपये मराठों को देने थे। शाहआलन दिल्ली चला गया। सन्धि के अनुसार मराठों ने प्रयाग पर अधिकार जमाना चाहा, किन्तु यहाँ के अमिल मुनीउद्दौला ने अंग्रेजों से सहायता लेकर मराठों को रोक लिया और प्रयाग से कोड़ा तक के इलाके पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। सन् 1773 में अंग्रेजों ने यह इलाका 50 लाख रुपये पर शुजाउद्दौला के हाथों बेंच दिया।

"सन् 1775 में शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गयी, उसकी जगह उसका बेटा आसफुद्दौला गद्दी पर बैठा। उससे और अंग्रेजों से 21 मई 1775 में एक सन्धि हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि 2 लाख 60 हजार रुपये महीना वह अंग्रेजों को उस पलटन के निमित्त दिया करेगा, जो उसकी रक्षा के लिए अवध में रखी जायेगी। सन् 1787 में कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर लार्ड कार्नवालिस और नवाब से लिखा–पढ़ी हुई, जिसके अनुसार यह रकम बढ़कर 50 लाख रुपया सालाना हो गयी।"

सन् 1797 में आसफुद्दौला की मृत्यु हो गयी, उसके उत्तराधिकारी नवाब सआदत अली खाँ ने इस सन्धि पत्र के द्वारा जो 21 फरवरी 1798 को लिखा गया, 50 लाख की रकम को बढ़ाकर 76 लाख रुपये सालाना कर दिया गया

तथा प्रयाग का किला अंग्रेजों को दे दिया, परन्तु यह रकम सदा बाकी रहा करती थी। इसलिए इस नवाब ने 14 नवम्बर सन् 1801 को अंग्रेजों के साथ लखनऊ में फिर एक सन्धि की, जिस अनुसार इस सालना रकम और पिछली बाकी रकम के बदले प्रयाग का जिला और इलाकों के साथ, सदैव के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया गया। वहीं से प्रयाग में मुसलमानों के शासनकाल का अन्त हो गया।

सन्दर्भ

1. *श्रीवास्तव, शालिग्राम–प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण–2016, पृ०–21.*
2. *तुलसीदास–कवितावली, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1980.*
3. *टेवर्नियर–ट्रेविल्स इन इण्डिया, 1676, जिल्द–1, पृ०–93–94.*
4. *श्रीवास्तव, शालिग्राम–प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण–2016, पृ०–48.*
5. *वही, पृ०–53.*
6. *वही, पृ०–56.*
7. *स्किनर–एक्सकर्शन इन इण्डिया, 1833, जिल्द–2, लन्दन, पृ०–253.*
8. *श्रीवास्तव, शालिग्राम–प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण–2016, पृ०–58.*
9. *वही, पृ०–58–59.*
10. *वही, पृ०–59.*
11. *वही, पृ०–61*
12. *वही, पृ०–64*
13. *त्रिपाठी, डॉ० राजेन्द्र 'रसराज'–संस्कृत ग्रन्थों में कौशाम्बी : अतीत एवं वर्तमान, टी० बालाजी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद संस्करण–2017, पृ०–202.*

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-140-141

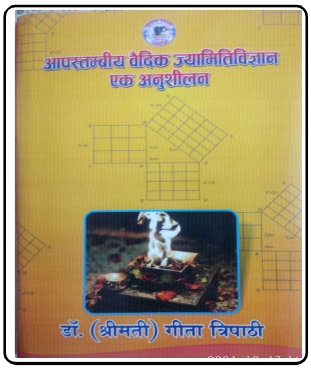

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक–डॉ० लोकेश त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर
बी०एड०विभाग
बी०आर०डी०पी०कॉलेज, देवरिया (उ०प्र०)
(दीन दयाल उपध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर से सम्बद्ध उ०प्र०)

आपस्तम्बीय वैदिक ज्यामितिविज्ञान : एक अनुशीलन

वैदिक धर्म यज्ञप्रधान रहा है। यज्ञों के अनुष्ठान सम्पादन से ऐहिक और पारलौकिक सकल फलों की प्राप्ति सम्भव रही है। यज्ञानुष्ठानों की सफलता ज्यामितिक आधारों एवं सिद्धान्तों पर निर्मित यज्ञशाला एवं यज्ञवेदियों पर अवलम्बित रही है। आर्य मनीषा ने अपने तपःपूत चिन्तनों से यज्ञशाला; यज्ञवेदियों और यज्ञ अग्नियों के आयतनों के निर्माण हेतु ज्यामितिक व्यवस्थाओं का निर्देशन किया है। जिसको अनिवार्यतः अनुप्रयुक्त किये जाने के लिए यज्ञविधानों में स्वीकृति प्राप्त है। प्राच्य आचार्यों ने ज्यामितिकविधि विधानों को शुल्बसूत्र नामक ''कल्प सहित्य'' की रचना विधा में विहित किया है। इन आचार्यों मे आचार्य आपस्तम्ब नामक शुल्बसूत्रकार का विशिष्ट स्थान निश्चित है। जिन्होंने अपने गुरु आचार्य बौधायन की ज्यामिति विद्या को अग्रेषित ही नहीं अपितु उनके अनेक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं में संश्लेषण, परिवर्धन तथा संशोधन विहित कर अपनी अवधारणओं से मण्डित वैदिक ज्यामितिविज्ञान का प्रतिपादन किया है। आपस्तम्ब प्रतिपादित वैदिक ज्यामितिविज्ञान का गवेषणात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करने में डॉ० (श्रीमती) गीता त्रिपाठी ने स्तुल्य प्रयास किया है। ''आपस्तम्बीय वैदिक ज्यामितिविज्ञान एक अनुशीलन'' शीर्षांकित इस ग्रन्थ के अन्तर्गत सम्पूर्ण अनुशीलन के तथ्यों को कुल सात अध्यायों मे विस्तारित किया गया है। जिसके प्रथम अध्याय में वेदों में वैज्ञानिक तत्त्व, गणित एवं ज्यामिति का परिचय प्रस्तुत है। द्वितीय अध्याय में आचार्य आपस्तम्ब से सम्बद्ध परिचयात्मक तथ्यों को तथा तृतीय अध्याय में आचार्य आपस्तम्ब विवेचित मापप्रमाण रेखा और उनसे निर्मित विविध ज्यामितिक

आचारों का निरूपण हुआ है। चतुर्थ अध्याय का विशदन वेदि निर्माण एवं मापन का सिद्धान्त के रूप में और पञ्चम अध्याय में वेदि प्रमाण निश्चयन का सिद्धान्त तथा षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत आग्निचयन अनुष्ठान में विहित आपस्तम्बीय ज्यामिति का विशद विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ का सप्तम् अध्याय ''उपसंहार'' की संज्ञा से अभिहित है, जिसमें गवेषणा का निष्कर्ष तथा यज्ञ वेदियों के चित्रों में प्रयुक्त शब्दसंक्षेप, सोमयाग की महावेदि, दर्शपूर्णमास याग की वेदि तथा वरुण प्रघास की वेदियों के चित्र निरूपित किये गये हैं। सर्वान्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची और शोधपत्र तथा पत्रिकायें के विवरण अनुबद्ध है।

लेखिका डॉ० (श्रीमती) गीता त्रिपाठी द्वारा प्रणीण यह ग्रन्थ इस वर्ष ''उ०प्र० संस्कृत संस्थानम्'' से पुरस्कृत हो चुका है। यह आकर ग्रन्थ अध्येताओं अनुसन्धाओं और वैदिक ज्यामिति विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए सर्वथा उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

लेखक–डॉ० (श्रीमती) गीता त्रिपाठी
प्रकाशक– महामाया प्रकाशन रायबरेली
I.S.B.N-978-81-908317-8-33
सस्करण 2019
मूल्य–450

मङ्गलम् -वर्ष 12(01), भाग-XXII, फरवरी 2021
ISSN-0976-8149, पृष्ठ-142

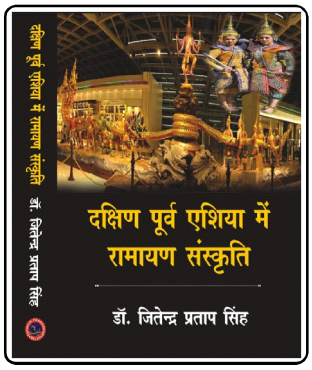

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक–डॉ० दिनकर त्रिपाठी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
राजनीतिविज्ञान, विभाग
फीरोज गाँधी कॉलेज रायबरेली (उ०प्र०)
(लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ)

दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण संस्कृति

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋषि कवि वाल्मीकि ने रामायण के माध्यम से भारत की गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा का विस्तृत विश्लेषण किया है। जिसमें जीवन के विभिन्न आयामों का सुन्दर वर्णन है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के व्यक्तित्व ने न केवल भारतीय संस्कृति अपितु वैश्विक संस्कृति को भी प्रभावित किया है। साथ ही विभिन्न मानवीय मूल्यों को भी प्रभावित किया है। इतिहासविद् डॉ० जितेन्द्र प्रताप सिंह की पुस्तक ''दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण संस्कृति शीर्षांकित'' इस ग्रन्थों में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा विशेषकर श्री राम द्वारा स्थापित मूल्यों का वैश्विक संदर्भ में विश्लेषण का सम्यक् प्रयास है। पुस्तक में दक्षिण पूर्वी एशिया देशों–थाईलैण्ड, वियतनाम, इंडोनेशिया, बर्मा और मलेशिया आदि के सांस्कृति परम्परा में रामायण के सांस्कृति प्रभाव का भौतिक सर्वेक्षण एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इन देशों के राजनीतिक जीवन, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन, धर्म एवं दर्शन तथा कला एवं संस्कृति में रामायण के प्रभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यथा सम्भव मानचित्रों, भित्ति चित्रों तथा कलात्मक प्रसंगों को पुस्तक में समाहित किया गया है। जो कि तथ्यों की प्रामाणिकता को और मजबूत करते हैं। निश्चय ही यह पुस्तक रामायण के वैश्विक प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान देगी। साथ ही क्षरण हो रहे मानवीय मूल्यों को भी स्थापित करेगी एवं भावी पीढ़ी को एक नवीन सांस्कृतिक चेतना भी प्रदान करेगी।

लेखक–जितेन्द्र प्रताप सिंह
प्रकाशक– शिवालिक प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली
I.S.B.N-819501255-8
सस्करण 2021
पृष्ठ–332
मूल्य–3500

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

Application for Membership

website:www.mangalamallahabad.com

Membership ID. No.- .....

(For Official Use)

PHOTO

1. Name (with title, e.g. Dr/Prof./Mr./Ms.) 2. Male/Female

2. Designation and Address-(If retired, Last address)

3. Mailing/Permanent Address-

4. Telephone (With STD code)-

Office:..... Residence:.....

Mobile No.:..... E-Mail :.....

Fax No. :.....

5. Type Of Membership

One Year :- Rs. 2000/- Three Year :- Rs. 5000/- Life Membership* :- Year:- Rs. 10,000/-

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj
Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963
IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi

Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences
463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj (U.P.)- India, 211002
website:www.mangalamallahabad.com
e-mail : drdinkartripathi@gmail.com

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

Subscription Order Form

website:www.mangalamallahabad.com

PHOTO

1. Name : .....
2. Address : .....
   .....
   Tel./ Mabile No. ..... e-mail .....
3. Life Membership of Manglam Sewa Samiti- Yes/No (If Yes then I.D. No.....)
4. Tpe of Subscription : Individual / Institon
5. Period of Subscription : Annual / Three year's / Life time*
6. Number of Copies Subscription : .....

Dear Editor,

Kindly acknowledge the receipt of my Subscription and staet sending the issue (s) of Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences (ISSN-0976-8149) at follwing Aeddres.

.....

.....

.....

The Subscription rates ars sa Follow : w.e.f. 31.08.21\012

India (Rs.)	Members of Manglam Sewa Samiti	Individuals	Institutions
Single Copy	Rs. 300/-	Rs. 600/-	Rs. 750/-
Anaual Copy	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 1500/-
Three Copy	Rs. 1500/-	Rs. 8000/-	Rs. 4500/-
Life time*	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 10,000/-
OTHER COUNTRIES	**Members of Sewa Samiti**	**Individuals**	**Institutions**
Single Copy	$ 65	$ 80	$ 120
Anaual Copy	$ 120	$ 150	$ 240
Three Copy	$ 360	$ 430	$ 720
Life time*	$ 3000	$ 5000	$ 10,000

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj

Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963

IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi

Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj (U.P.)- India, 211002

website:www.mangalamallahabad.com

e-mail : drdinkartripathi@gmail.com